गांधीजी

लेखक
जुगतराम दवे
अनुवादक
काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, कालुपुर, अहमदाबाद

पहली बार, ५,०००

छ आना

अक्तूबर, १९४९

प्रकाशक की ओर से

आजतक नवजीवन कार्यालय ज़्यादातर गुजराती और कुछ-कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकें प्रकाशित करता आया है। इस पुस्तक से वह मर्यादित रूप में राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी में पुस्तक-प्रकाशन के कार्य का श्रीगणेश करता है। और इसमें उद्देश्य यह है कि शुद्ध और शिष्ट राष्ट्रभाषा में स्वराज्य को पुष्ट करनेवाला साहित्य जनता के लिए सुलभ किया जाय।

आजतक इस कार्यालय से कई ऐसी किताबें निकली हैं, जो राष्ट्रभाषा में भी निकली होतीं, तो स्वराज्यप्रेमी जनता उनसे फ़ायदा उठा सकती; लेकिन वैसा हुआ नहीं। इसलिए खयाल आया कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी इस कार्य को हाथ में लेने की ज़रूरत है। इसीलिए यह पहली पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसके बाद हाथ में ली हुई नीचे लिखी किताबें जैसे-जैसे तैयार होती जायेंगी, वैसे-वैसे उन्हें छपाने का इरादा है।

एक धर्मयुद्ध : श्री. महादेव देसाई

सयानी कन्या से : श्री. नरहरि परीख

जीवित त्यौहार : श्री. काका कालेलकर

आशा है, हमारे ये प्रकाशन हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलनेवाली जनता को पसन्द आयेंगे।

२ अक्तूबर, १९४१

बालमित्रों से

पिछले बारह बरस से गुजरात के बालक इस पुस्तक को बड़े चाव के साथ पढ़ते आ रहे हैं। बारह बरस पहले श्री जुगतरामभाई ने इसे गुजरात के हमारे बालमित्रों के लिए लिखा था। उन्हीं दिनों मैंने इसका एक अनुवाद किया था, जो बाद में कहीं लापता हो गया। बारह साल बाद अबकी मुझे मौक़ा मिला और मैंने इसका दुबारा अनुवाद किया।

पुस्तक आपके हाथ में है। आप इसे पढ़िये। उत्साह और उमंग के साथ पढ़िये। बार-बार पढ़िये और पढ़कर गांधीजी के जीवन को समझने की कोशिश कीजिये।

ईश्वर करे, पूज्य गांधीजी के जीवन की ये झाँकियाँ हममें से हरएक को ऊँचा उठाने और आगे बढ़ानेवाली हों!

गांधी-सप्ताह
ता० २-१०-'४१

काशिनाथ त्रिवेदी

प्रस्तावना

पूज्य गांधीजी की साठवीं जयन्ती की याद में ये रेखाचित्र पहली बार लिखे गये थे। तबसे बरसों बीत चुके हैं, और ईश्वर की करुणा से गांधीजी का जीवन बालक से भी अधिक जोश के साथ बढ़ता रहा है।

स्वभावतः इस अवसर पर कुछ नये रेखाचित्र इसमें शामिल किये हैं। पुराने चित्रों की वस्तु और क्रम में भी कुछ परिवर्तन किये हैं।

गुजरात के बालक इसे उमंग के साथ पढ़ें और बापूजी की आत्मा को सुख पहुँचानेवाले बनें!

वेड़छी आश्रम
उद्योगशाला
ता० १३-८-१९३९

जुगतराम दवे

सूची

गांधीजी

१

कहाँ के हैं ?

अगर कोई पूछे—'गांधीजी कहाँ के हैं ?'

तो पोरबन्दर सबसे पहले कह उठेगा—'मेरे यहाँ के हैं। यहीं उनका जनम हुआ है।'

सागर के उस पार से फिनिक्स और टॉल्स्टॉय आश्रम पुकार उठेंगे—'भाई ! उनका सच्चा जनम तो हमारे यहाँ हुआ। क्या इतने ही में भूल गये ?'

अहमदाबाद कहेगा—'लेकिन आश्रम तो उन्होंने मेरी साबरमती के किनारे बसाया था न ?'

पूना अपना अधिकार जताते हुए कहेगा—'यरवड़ा का जेल तो मेरा है न ? बापू का 'यरवड़ा मंदिर', उनका वह 'जेल महल', क्या इस तरह भूल जाने की चीज़ है ?'

बिहार का किसान क्यों पीछे रहने लगा ? वह कहेगा—'आपकी जो मर्ज़ी हो, कह लें; मगर गांधीजी हैं तो हमारे ! आपको क्या पता कि हमारे

नील के खेतों में उन्होंने कितने-कितने चक्कर काटे हैं?'

क्या पंजाब चुपचाप इन दावों को सह सकता है? नहीं, वह अपनी बुलन्द आवाज़ से पूछेगा—'क्या आप इस हक़ीक़त से इनकार करना चाहते हैं कि गांधीजी को जगानेवाला, होश में लानेवाला, मेरा जलियाँवाला बाग़ ही है?'

कलकत्ता कहेगा—'लेकिन भाई, असहयोग का बिगुल तो मेरे आँगन में बजा था न?'

बंबई पूछेगी—'पर मेहरबान, सत्याग्रह का आरंभ करने तो वे मेरे ही घर आये थे न?'

बारडोली का दावा भी सुनने लायक होगा। वह कहेगी—'नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ भला कौन सुनेगा? पर सच तो यह है, कि गांधीजी ने लड़ाई के लिए मैदान मेरा ही चुना था।'

इसी तरह दिल्ली भी गांधीजी को अपना समझती है; क्योंकि गांधीजी ने अपने उपवास के पवित्र इक्कीस दिन वहीं बिताये थे। बेलगाँव को अपना दावा किसीसे कम नहीं मालूम होता। हिन्दुस्तान के राष्ट्रपति का ताज बेलगाँव की महासभा ने ही

गांधीजी को पहनाया था न ? और राजकोट, जहाँ उन्होंने अपने प्राणों की बाज़ी लगाई थी, वह भी तो उन्हें अपना ही समझता है।

इन सारी बातों को सुनकर पहाड़ों का राजा हिमालय होठों में मुसकराता है। वह कहता है— 'कौन इन लोगों के मुँह लगे ? इन बेचारों को क्या पता कि गांधीजी मन ही मन किसके लिए तड़पा करते हैं ?'

पर धन्य है, उस छोटे-से सेवाग्राम को ! बीच हिन्दुस्तान में बसे हुए इस नन्हें-से गाँव का कोई नाम तक नहीं जानता था। औरों की तरह न वह अपना दावा लेकर आगे बढ़ा, न झगड़ा, न फ़रियाद की। फिर भी बड़ा भागवान है वह, कि गांधीजी आज उसीको अपनाये हुए हैं। इसीसे न साबरमती का सन्त अब सेवाग्राम का सन्त कहलाता है ?

२

जाति

वैसे गांधीजी मोढ़ बनियों की जात में पैदा हुए हैं। पर वे ख़ुद अपने को क्या कहते हैं?

एक बार सरकार ने उनपर राजद्रोह का मामला चलाया। अहमदाबाद की अदालत में मुक़दमे की सुनवाई हो रही थी। अदालत में न्यायाधीश (मजिस्ट्रेट) अपराधी का नाम-पता पूछता ही है। गांधीजी से भी पूछा गया:

'आपका नाम क्या है?'

'मोहनदास करमचंद गांधी।'

'आप रहते कहाँ हैं?'

'सत्याग्रह आश्रम, साबरमती।'

'आपका पेशा क्या है?'

'किसानी और जुलाहागिरी।'

यह आख़िरी जवाब सुनकर न्यायाधीश सन्न रह गये! जनता दंग रह गई!

३

पुतलीबाई

गांधीजी की माँ का नाम पुतलीबाई था। वे बड़ी भावुक थीं। बिना पूजापाठ किये कभी खाना न खाती थीं और रोज़ देवदर्शन के लिए मंदिर में जाती थीं।

महीने में दो बार बिलानाग़ा एकादशी का व्रत रखती थीं, और दिन में एक बार खाकर रह जाना तो उनके लिए बाँयें हाथ का खेल था।

बारिश के चार महिनों में, चातुर्मास में, वे तरह-तरह के व्रत-उपवास किया करती थीं—कभी चान्द्रायण, कभी एकाशन, कभी कुछ, कभी कुछ।

किसी साल चौमासे में वे कुछ कड़े व्रत भी किया करती थीं। एक व्रत यह था कि जिस दिन सूरज दिखाई दे जाय, उसी दिन खाना, वर्ना लंघन कर जाना।

ऐसी भोली और भावुक माँ पर बच्चों का बेहद प्रेम हो, तो उसमें अचरज ही क्या? जिस दिन माँ को भूखों रहना पड़ता, बच्चे दिन-दिन भर बादलों की ओर ही देखा करते, और ज्योंही सूरज दीखता, दौड़ कर माँ के पास ख़बर देने पहुँच जाते:

'माँ! माँ! दौड़ो, दौड़ो, सूरज निकला।' लेकिन माँ पहुँचें, पहुँचें, इतने में तो सूरज फिर बादलों में छिप जाता और यों माँ को कई बार भूखों रह जाना पड़ता।

मगर माँ बात की ऐसी तो पक्की थीं, कि दुनिया चाहे उलट जाये, ख़ुद बीमार पड़ जाये, अरे, जान चली जाये, तो भी व्रत तो व्रत ही रहता था!

ऐसी टेकवाली, ऐसी भली, ऐसी भोली और भावुक माँ जिनकी थीं, उन गांधीजी का फिर क्या पूछना था?

४

कस्तूरबा

शायद तुममें से कइयों ने गांधीजी को देखा होगा, पर कस्तूरबा को तो शायद बिरलों ही ने देखा हो! वे गांधीजी जैसे महापुरुष की पत्नी हैं। तुम सोचते होगे कि वे महारानी बन कर रहती होंगी। माताजी के नाते लोगों से अपने को पुजवाती होंगी। उनका ठाट-बाट ही कुछ निराला रहता होगा! आश्रम में रहते समय वे गांधीजी की बराबरी से बैठतीं और लोगों को दर्शन दिया करती होंगी! पर सचमुच ऐसी कोई बात नहीं। 'बा' का तो ढंग ही कुछ और है। वे कभी आगे आती ही नहीं। आश्रम में जाकर देखो, तो उन्हें कहीं न कहीं, किसी काम में मशग़ूल पाओ! कभी रसोईघर में रोटी बेलती दिखाई पड़ेंगी, कभी गांधीजी का खाना तैयार करती मिलेंगी, कभी किसी बीमार की सेवा में, तीमारदारी में, लगी होंगी। हाँ, जब कभी गांधीजी बीमार होते हैं, तो उनका सर दबाने का काम कस्तूरबा ही करती हैं, और ऐसे समय वे उनके पास ज़रूर दिखाई पड़ जाती हैं।

कस्तूरबा की यह आदत नहीं कि वे सभाओं में या जलसों में गांधीजी के साथ बराबरी से जायँ, और मंच पर खड़ी होकर भाषण करने लगें। उनका तो तरीक़ा ही कुछ और है। अक़सर तो वे जाती ही नहीं, मुक़ाम पर ही रहती हैं, पर जब जाती हैं, तो चुपचाप पीछे-पीछे जाती हैं, और सभा के किसी कोने में, बहनों के बीच, चुपके से बैठ जाती हैं। किसीको ख़याल तक नहीं होता कि ये कस्तूरबा हैं: गांधीजी की पत्नी हैं!

कस्तूरबा को बड़ी बन कर घूमने का ज़रा भी शौक़ नहीं। बड़प्पन के दिखावे से उन्हें कोई मतलब नहीं। वे तो एक ही बात जानती हैं— गांधीजी के पीछे-पीछे चलना और उनकी सेवा करना! सीता ने राम के लिए राजपरिवार का सुख छोड़ा, और जंगल की राह पकड़ी थी। कस्तूरबा भी इसी तरह शाही सुखों का त्याग करके गांधीजी के साथ आश्रमवासिनी बनी हैं।

इस ज़माने में तुम्हें कहीं सती के दर्शन करने हों, तो कस्तूरबा के दर्शन कर लो।

५

परीक्षा

गांधीजी अंग्रेज़ी के दूसरे या तीसरे दर्जे में पढ़ते थे।

एक बार उनके स्कूल में कोई इन्स्पेक्टर इम्तहान लेने आये और उन्होंने गांधीजी की कक्षा के सभी छात्रों को अंग्रेज़ी के पाँच शब्द लिखाये।

वर्ग-शिक्षक पास में खड़े थे। वे घूर-घूर कर तिरछी निगाह से देख रहे थे कि कौन क्या लिख रहा है। उनकी छाती धड़क रही थी। वे डरते थे कि कहीं लड़कों ने ग़लत लिख दिया तो डाँट उन पर पड़ेगी। इन्स्पेक्टर कहेंगे: 'मास्टर पढ़ाना नहीं जानता।'

मास्टर ने देखा कि मोहनदास ने 'केट्ल' (Kettle) शब्द के हिज्जे ग़लत लिखे हैं। पर बेचारे क्या करते? वे घूमते-घामते मोहनदास के पास गये, और अपने बूट की ठोकर से उनका पैर दबा कर

इशारा करने लगे कि वह पासवाले लड़के की पट्टी देख लें। लेकिन मोहनदास तो इन बातों से कोसों दूर रहनेवाले थे। उन्हें ख़याल तक न हुआ कि मास्टर चोरी का इशारा कर रहे हैं। फिर वह कैसे समझ लेते कि शिक्षक दूसरे का देख कर सही लिखने को सुझा रहे हैं?

दूसरे दिन शिक्षक ने मोहनदास से कहा—'निरे बुद्धू हो जी तुम! कितने इशारे किये, मगर तुम्हारी समझ में कुछ ख़ाक भी न आया।'

गांधीजी ने शिक्षक से तो कुछ नहीं कहा, मगर अपने मन में यह ज़रूर समझ लिया कि शिक्षक की बात मानने लायक़ न थी; वह ग़लत थी और पाप की जड़ थी।

६

सत्य

बचपन ही से गांधीजी को सत्य या सचाई बहुत प्रिय रही है।

उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि कैसे वे अपने बचपन में कुछ दिनों के लिए बुरी सोहबत में पड़ गये थे और फिर कैसे उससे छूटे।

बचपन में अपने साथी-संगियों के साथ गांधीजी को भी बाज़ार का खाने और बीड़ी वग़ैरा पीने का शौक़ लग गया था। ऐसे कामों के लिए माँ-बाप से तो पैसे माँगे नहीं जा सकते। इसलिए इन लोगों ने घर के नौकरों की जेब से पैसे चुराना सीख लिया।

मोहनदास को ये काम दिल से पसन्द नहीं थे; मगर क्या करते? दोस्तों को खाते-पीते देख कर मन मचल पड़ता था, और दिल बेकाबू हो जाता था।

यों होते-होते खाने-पीने का ख़र्च, और ख़र्च के साथ क़र्ज़ बढ़ने लगा। दूकानदारों के तकाज़े शुरू

हो गये। अब क्या हो ? ख़याल हुआ, नहीं, डर-सा लगने लगा कि कहीं दूकानदार दस जनों के सामने पैसे न माँग बैठे! कहीं घर जाकर पिताजी से न कह बैठे!

नौकरों की जेब से तो पैसे दो पैसे ही मिल पाते थे; और क़र्ज़ बेहद बढ़ गया था। अब क्या हो?

दोस्तों की टोली परेशान हो उठी। इस टोली में मोहनदास के बड़े भाई भी शामिल थे। इस आफ़त से बचने का उन्हें एक ही उपाय सूझा, और वह चोरी का उपाय था। उन्होंने कहा — 'मेरे हाथ में यह सोने का कड़ा है; इसमें से एक तोला सोना कटवा कर क़र्ज़ चुकाया जा सकता है, और बात भी छिपाई जा सकती है।'

मोहनदास को यह अटपटा तो लगा; लेकिन विरोध करने की उनकी हिम्मत न हुई। उन्होंने कड़ा कटने दिया।

इस तरह क़र्ज़ तो अदा हो गया, पर जिसे सचाई प्यारी थी, वह तो मन-ही-मन बेचैन हो उठा!

आत्मा उसकी पुकार उठी — 'अरेरे, मैं इस चोरी में क्यों शामिल हुआ ? मैंने छिप कर खाया, छिप कर

बीड़ी पी ! भाड़ में जाय यह खाना, और धूल में मिले यह धुआँ उड़ाना । '

फिर ख़याल आया – ' हाय-हाय ! कैसी ग़लती हुई ! ख़ुद ठगाया और पिताजी को भी ठगा । '

मोहनदास उदास रहने लगे — उन्हें न खाना अच्छा लगता था, न पीना । जो ग़लती हो गई थी, उसका ख़याल दिनरात दिल को कचोटा करता था ।

आख़िर उन्होंने तय कर लिया — ' पिताजी के सामने जाकर अपनी ग़लती क़बूल करूँगा । वे नाराज़ होंगे, नाराज़ी सह लूँगा । मारेंगे, मार खा लूँगा । '

पिताजी के सामने जाकर मुँह से कुछ कहने की हिम्मत कैसे हो ? मोहनदास ने एक चिट्ठी लिखी । चिट्ठी में अपनी ग़लतियों का पूरा ब्योरा लिखा; ग़लतियाँ क़बूल कीं और पिताजी से माफ़ी माँगी । आँसू भरी आँखों और काँपते हाथों चिट्ठी पिताजी को दी । पढ़ते ही उनकी छाती भर आई । आँखें सजल हो उठीं । उन्होंने कुसूर माफ़ कर दिया, और अपने सत्यवादी बेटे को गले लगा लिया !

७

प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र

इन दोनों सत्याग्रहियों की कथा पर गांधीजी बचपन ही से मुग्ध हैं। जो ख़ुद सचाई से प्यार करता है, उसे सच बोलनेवालों की, सत्यवादियों की, कथायें क्यों न प्यारी लगेंगी ?

राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए कितनी तकलीफ़ें उठाईं ? राज खोया, पाट खोया, जंगलों में मारे-मारे फिरे, स्त्री बेची, पुत्र बेचा, और फिर ख़ुद भी चांडाल के हाथ बिक गये। रोंगटे खड़े करनेवाली मुसीबतें सहीं, लेकिन सचाई न छोड़ी। कहते हैं, गांधीजी ने बचपन में 'हरिश्चन्द्र' का एक नाटक देखा था। बस, जिस दिन वह नाटक देखा, उस दिन से वे हरिश्चन्द्र के ही सपने देखने लगे। हरिश्चन्द्र की याद आते ही वे अक़सर रो पड़ते थे। उन्होंने लिखा है कि आज भी यदि वे उस नाटक को पढ़ें, तो उनकी आँखें आँसुओं से तर हुए बिना न रहें। वे कहा करते हैं कि हरिश्चन्द्र

की तरह दुःख सहने और तिस पर भी सचाई से तिलमात्र न हटने का नाम ही सत्य है।

गांधीजी को हरिश्चन्द्र से भी बढ़ कर प्रह्लाद की कथा प्यारी है। हरिश्चन्द्र तो राजा थे, अनुभवी थे और ज्ञानी थे।

लेकिन प्रह्लाद?

वह तो एक नन्हा-सा सुकुमार बालक था। राक्षस के घर पैदा होकर भी उसने भगवान् का नाम लेने की हिम्मत दिखाई थी। पिता ने उसे पहाड़ पर से फिंकवाया, पर उसने रामनाम न छोड़ा। समुद्र में डुबोया, तो भी रामनाम न छोड़ा। जलते हुए खंभे से लिपटने को कहा गया, वह निधड़क लिपट गया, पर उसने रामनाम न छोड़ा।

गांधीजी प्रह्लाद के इस सत्याग्रह को हमेशा अपने सामने रखते हैं। और उठते-बैठते इसीका उदाहरण दिया करते हैं—'प्रह्लाद के समान सुकुमार बालक भी सत्याग्रह की शक्ति दिखा सकता है। सत्याग्रह के लिए न पहलवानों की-सी ताक़त ज़रूरी है, न राजा के-से सैन्यबल की आवश्यकता है।'

८

वैष्णव

अगर कोई गांधीजी से पूछे: 'आपका धर्म क्या है?' तो वे कहेंगे: 'वैष्णव।'

जो उन्हें नहीं जानते, उनको यह सुन कर आश्चर्य हो सकता है। क्योंकि गांधीजी न कभी मन्दिर में जाते हैं, न घर में देवता की पूजा करते हैं, न भगवान् को भोग लगाते हैं, और न ख़ुद गले में कण्ठी या माला पहनते हैं। तिस पर जात-पाँत का कोई ख़याल नहीं रखते—हर किसीके साथ बैठ कर खा लेते हैं।

भला, ऐसे आदमी को कोई वैष्णव कह सकता है?

मगर गांधीजी से पूछो, तो वे कहेंगे: 'भई, मैं तो अपने को वैष्णव ही मानता हूँ। नरसिंह मेहता ने वैष्णव के जो लक्षण बताये हैं, उनको मैं जानता हूँ और वैसा वैष्णव बनने की कोशिश कर रहा हूँ। मेहताजी कहते हैं:

वैष्णव जन तो तेने कहीए
जे पीड़ पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तोये,
मन अभिमान न आणे रे। वैष्णव०
सकळ लोकमां सहुने वन्दे,
निन्दा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चळ राखे,
धन धन जननी तेनी रे। वैष्णव०
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी,
पर स्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले,
परधन नव झाले हाथ रे। वैष्णव०
मोह माया व्यापे नहि जेने,
दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामनामशुं ताळी रे लागी,
सकळ तीरथ तेना तनमां रे। वैष्णव०
वणलोभी ने कपटरहित छे,
काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैंयो, तेनुं दरशन करतां,
कुळ एकोतेर तार्यां रे। वैष्णव०

वैष्णव वह है, जो दूसरों की तकलीफ़ को समझता है; दुःख में दूसरों की मदद करता है; पर मन में ज़रा भी ग़रूर नहीं आने देता।

वैष्णव वह है, जो दुनिया में सबके सामने झुकता है, किसीकी निन्दा नहीं करता, और ख़ुद मन, वचन और शरीर से निश्चल रहता है।

वैष्णव वह है, जो सबको बराबरी की निगाह से देखता है, जो तृष्णा छोड़ चुका है, जो पराई औरतों को माँ समझता है, ज़बान से कभी झूठ नहीं बोलता, और पराये धन को कभी हाथ नहीं लगाता।

वैष्णव वह है, जिस पर मोह और माया का कोई असर नहीं होता, जिसके मन में पक्का वैराग्य जमा हुआ है, और जिसे रामनाम की लौ लग चुकी है।

वैष्णव वह है जो छल-कपट से दूर रहता है, लालच को पास नहीं फटकने देता, और काम-क्रोध पर सवारी कसे रहता है।

नरसिंह मेहता कहते हैं कि जो ऐसा वैष्णव है, उसकी माता को सौ-सौ बार धन्यवाद है; उसके शरीर में सभी तीर्थ समाये हुए हैं; और उसका दर्शन करने से मनुष्य की इकहत्तर पीढ़ियों का उद्धार हो जाता है।

९

चर्खा

'हे भगवन्! अगर मौत ही देनी हो, तो ऐसी देना कि एक हाथ में चर्खे का हत्था हो, दूसरे में पूनी रह गई हो, और आँखें मुँद जायँ।'

भला, भगवान् से ऐसी प्रार्थना कौन करता होगा?

गांधीजी ही तो; और कौन कर सकता है?

चर्खे से उन्हें बेहद प्यार है।

रोज़ चर्खे पर सूत कातना उनका एक अटल नियम है; व्रत है। कैसा भी काम क्यों न हो, गांधीजी चर्खा कातेंगे और ज़रूर कातेंगे।

सफ़र में भी वे चर्खे को हमेशा अपने साथ रखते हैं, और फ़ुरसत निकाल कर ज़रूर कात लेते हैं। बीमारी और कमज़ोरी में भी वे कातना नहीं छोड़ते! उनका व्रत ही ऐसा है।

जब जेल जाते हैं, तो वहाँ भी वे अपने प्राणों से प्यारे चर्खे को ज़रूर साथ ले जाते हैं।

यरवड़ा जेल में गांधीजी ने दो चक्कोंवाले चर्खे पर ख़ूब काता और कातते-कातते उसमें कई तरह के सुधार

भी किये। यही सुधरा हुआ, सुन्दर, नाज़ूक, नन्हा चर्खा आज 'यरवड़ा चक्र' के नाम से मशहूर है।

चर्खे में वह ताक़त है कि उससे देश के करोड़ों नंगे अपना तन ढँक सकते हैं, और भूखे भरपेट भोजन पा सकते हैं। चर्खे के सूत में देश को स्वराज्य दिलाने की शक्ति है। इसीसे गांधीजी उसे कामधेनु कहते हैं, और उसकी हलकी, मीठी गूँज में मीठे-से-मीठे संगीत का अनुभव करते हैं।

देश में करोड़ों ऐसे ग़रीब हैं, जो दिन-रात पसीना बहाने पर भी भरपेट खा नहीं पाते। उनके इस दुःख का अनुभव हमें कैसे हो सकता है? तभी न, जब हम भी उनकी तरह कुछ मेहनत करें, कुछ पसीना बहायें! इसीलिए गांधीजी कहते हैं कि जिन्हें देश के ग़रीबों का दुःख दूर करना है, और उनके दुःख में शरीक होना है, उन्हें हर रोज़ कम से कम आध घण्टा सूत ज़रूर कातना चाहिए।

हिन्दुस्तान के तिरंगे झंडे के बीचोंबीच चर्खा छपाने का ख़याल भी गांधीजी का ही है। झंडे पर छपा हुआ वह चर्खा दुनिया के बीच यह ऐलान करता है कि जो स्वराज्य करोड़ों ग़रीबों का है, वही सच्चा स्वराज्य है।

१०

गांधीजी की रहन-सहन

क्या तुम जानते हो, गांधीजी की रहन-सहन कैसी है? जानना चाहोगे क्या कि वे किस तरह रहते हैं?

तो सुनो :

वे रोज़ सबेरे चार बजे नियम से उठते हैं। दतौन करके हाथ-मुँह धोते और फिर प्रार्थना में शामिल होते हैं। प्रार्थना के बाद वे कभी थोड़ा आराम करते, कभी लिखते-पढ़ते और फिर नीबू का रस और शहद मिला हुआ गरम पानी पीते हैं। इसके बाद वे कसरत के तौर पर रोज़ नियम से घूमने जाते हैं।

लौटते समय आश्रम के बीमार भाई-बहनों को देखते हुए, उनका कुशल-मंगल पूछते हुए, वापस अपनी जगह पर आते हैं।

फिर वे रसोईघर में जाकर अपने हिस्से का काम करते हैं। इसी समय वे थोड़ा नाश्ता भी कर लेते हैं।

इसके बाद या तो आनेवाले मुलाकातियों से बातचीत करते हैं, या आये हुए पत्रों को पढ़ते और

उनके जवाब लिखते हैं, या 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के लिए लेख लिखते हैं।

भोजन के समय परोसने का काम वे बड़े चाव से करते हैं।

दोपहर को वे नियम से चर्खा चलाते हैं। दिन में कम से कम एक घण्टा, और कम में कम १६० तार कातने का उनका नियम है।

शाम को सूरज डूबने से पहले ही वे भोजन कर लेते हैं, और भोजन के बाद थोड़ा घूम लेते हैं।

शाम को सात बजे जब प्रार्थना की घण्टी बजती है, वे घूम कर वापस आ जाते हैं।

इसके सिवा, गांधीजी अपने समय-पत्रक के अनुसार कभी आश्रम की बहनों को, कभी विद्यार्थियों को और कभी बाल-मंदिर के बालकों को कुछ पढ़ाते-लिखाते भी हैं।

इस तरह सारा दिन काम करके रात साढे नौ बजे वे सो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी काम इतना ज़्यादा हो जाता है कि रात में देर तक जाग कर उसे पूरा करना पड़ता है। यों, देर से सोने पर भी सुबह चार बजे तो वे उठते ही हैं। इसमें कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

११

सत्याग्रही की दिनचर्या

ऊपर तुम देख चुके कि एक सत्याग्रही की रहन-सहन और उसकी दिनचर्या कैसी होती है।

उसका एक भी मिनट निकम्मा नहीं जाता। अपना एक क्षण भी वह आलस्य में नहीं बिताता।

गांधीजी की दिनचर्या की दूसरी ख़ूबी यह है कि वे अपने रोज़ के काम का समय-पत्रक हर रोज़ बनाते हैं, और उसके मुताबिक़ एक-एक मिनट की पाबंदी रखते हैं। जिस काम के लिए जो समय तय कर लेते हैं, उसे ठीक उसी समय शुरू करते हैं, और जितना समय उसे देना होता है, उतना ही देते हैं। अपना सारा दिन वे घड़ी के काँटे पर, घड़ी की-सी नियमितता के साथ बिताते हैं। फिर, दिन-भर जितना काम वे करते हैं, उसका रोज़नामचा भी बराबर लिखते हैं, और रात में सोने से पहले उसे एक बार देख कर और पूरा करके सोते हैं।

१२

मौनवार

गांधीजी हर सोमवार को मौन रखते हैं, यानी उस दिन वे किसीसे बोलते या बातचीत नहीं करते। कैसा भी ज़रूरी काम क्यों न आ पड़े, वे अपना मौन नहीं तोड़ते। ज़रूरत पड़ने पर जो कहना होता है, कागज़ पर लिख कर कह देते हैं, लेकिन बोलते तो हरगिज़ नहीं।

हफ्ते में एक दिन इस तरह मौन रहने से उन्हें बड़ी शांति मिलती है। उस दिन न किसीसे बातचीत करनी पड़ती है, न सभाओं में भाषण देने पड़ते हैं, और न कहीं घूमने-भटकने जाना पड़ता है। इस तरह उस दिन हलचल या चहल-पहल का सारा काम बंद रहता है।

मौन-दिन की इस शांति में उनको काफ़ी आराम मिल जाता है। लेकिन जानते हो, इस आराम का उपयोग वे किस प्रकार करते हैं?

आराम का यह दिन गांधीजी सोकर तो बिता नहीं सकते। हफ़्ते के अख़ीर में काम का जो ढेरों बोझ बढ़ जाता है, मौन-दिन की शांति में उसीको उतार कर वे हलके हो जाते हैं।

यों, मौन-पूर्वक, चुपचाप, काम करने में जो आनंद आता है, वह अनुभव करने की चीज़ है।

१३

गांधीजी की विशेषतायें

गांधीजी की कुछ विशेषतायें, उनकी कुछ ख़ासियतें, जानने लायक़ हैं।

वे कभी धीमी या सुस्त चाल से नहीं चलते। उनकी चाल में हमेशा फुर्ती रहती है।

वे कभी झुक कर या सिमट कर नहीं बैठते। हमेशा तन कर और स्थिर आसन से बैठते हैं।

वे कभी मेज का सहारा लेकर नहीं लिखते। तन कर बैठते और घुटनों पर कागज़ रख कर ही लिखते हैं।

वे जो कुछ लिखते हैं, उसे दुबारा पढ़ कर ही आगे जाने देते हैं। एक छोटा-सा कार्ड लिखेंगे, तो उसे भी दुबारा पढ़ेंगे, जो कुछ घटाना-बढ़ाना होगा, घटायेंगे-बढ़ायेंगे; और तभी उसे डाकखाने जाने देंगे।

उन्हें सफ़ाई और सुघड़ता बहुत प्यारी है। यही वजह है कि वे अपने कपड़े-लत्ते और दूसरी चीज़ों को हमेशा बहुत ही साफ़ और सजावट के साथ रखते हैं।

गांधीजी हरएक काम को बड़ी ख़ूबी और बारीकी के साथ करते हैं।

वे कभी अपना फोटू खिंचवाने नहीं बैठते।

वे काम में कितने ही क्यों न मशग़ूल हों, फिर भी कोई बाल-गोपाल, कोई राजा बेटा, उनके पास जा पहुँचता है, तो वे उससे खेले बिना रह नहीं सकते।

बातचीत करते समय गांधीजी अक़सर ख़ूब खिलखिला कर हँसते हैं। हँसते क्या हैं, मानों फ़ूल बखेरते हैं।

१४
आश्रम — १

अहमदाबाद गुजरात का राजनगर है। इसी राजनगर के नज़दीक साबरमती के किनारे गांधीजी का पुराना आश्रम है।

एक ज़माना था, जब इस आश्रम में गांधीजी रहते थे, कस्तूरबा रहती थीं, और दूसरे बहुतेरे भाई और बहन, बच्चे और बच्चियाँ भी रहती थीं।

आश्रम में गुजराती थे, महाराष्ट्री थे, पंजाबी और सिन्धी थे, मद्रासी और नेपाली भी थे : हिन्दुस्तान के सभी सूबों के लोग वहाँ रहते थे। यूरोप के गोरे व चीन और जापान के पीले लोग भी रहते थे।

वे सभी खादी पहनते और नियम से कातते थे।

वे सुबह चार बजे उठ कर प्रार्थना में आते और फिर शाम को सात बजे की प्रार्थना में भी शरीक होते। प्रार्थना में वे श्लोक-पाठ करते, भजन गाते और रामधुन की रट लगाते। वे गीता का पारायण करते; और अक़सर प्रार्थना के बाद गांधीजी का प्रवचन सुनते।

सभी आश्रमवासी एक साथ, एक जगह बैठकर

खाते। भोजन में मिर्च, मसाला, हींग आदि का बिलकुल उपयोग न करते। सादा और सुस्वादु भोजन आश्रम की विशेषता रहती। सुबह-शाम नियत समय पर सब खाने बैठते और शांतिमंत्र बोल कर खाना शुरू करते। ऐसे समय कई बार गांधीजी ख़ुद सबको परोस कर खिलाते।

आश्रम में हरिजन भी सबके साथ ही रहते और साथ ही काम करके आश्रम के भोजनालय में भोजन करते।

आश्रम में सफ़ाई का बहुत ख़याल रक्खा जाता। जहाँ-तहाँ थूकना, काग़ज़ फेंकना, जूठन गिराना या पेशाब करना मना था।

आश्रमवासी जहाँ-तहाँ पाखाना फिर कर आस-पास के जंगल को गन्दा नहीं करते। वे सुन्दर, हवादार और उजेले कमरों में पाखाने का प्रबन्ध करते हैं, और पाखाना फिरने के बाद मैले को साफ़ मिट्टी से ढँक देते हैं। आश्रमवासी अपने पाखानों की सफ़ाई ख़ुद ही करते हैं। इससे जो खाद मिलता है, उसके कारण आश्रम के बगीचे ख़ूब पनपते और लहलहाते रहते हैं।

१५

आश्रम — २

गांधीजी के साबरमतीवाले आश्रम में एक छात्रालय था। इस छात्रालय में देश-विदेश के विद्यार्थी आकर रहते थे। कोई कातना सीखता था, कोई पींजना सीखता था और कोई कर्घे पर हाथ से खादी बुनना सीखता था। कुछ विद्यार्थी कारख़ाने में बढ़ईगिरी का काम सीखते और चर्खे वग़ैरा बनाते थे।

आश्रम में कई लड़के और कई लड़कियाँ रहती थीं। वे सभी उद्योग सीखते और साथ-साथ पढ़ते-लिखते भी थे।

आश्रम में बड़ी बहनों के लिए एक स्त्री-निवास था। वे रोज़ अपने निवास में इकट्ठा होतीं और प्रार्थना करतीं, कुछ देर लिखतीं-पढ़तीं और कातने-पींजने का काम भी करतीं। आश्रम का संयुक्त भोजनालय, जहाँ सभी आश्रमवासी मिल कर खाते थे, ये बहनें ही चलाती थीं। वे बारी-बारी से

रसोईघर में काम करतीं, और कोठार का अनाज साफ़ करने में मदद पहुँचातीं।

आश्रम में नन्हें-नन्हें बच्चों का एक बालमंदिर भी चलता; लेकिन उसके लिए अलग से कोई शिक्षक न रक्खा जाता। आश्रमवासिनी बहनें ही उस बालमंदिर का काम देखतीं।

आश्रम में एक सुन्दर गोशाला थी। गोशाला में बहुतेरी मोटी-ताज़ी गायें थीं। आश्रम में हमेशा गाय के दूध का ही उपयोग होता।

आश्रम का अपना एक छोटा-सा चर्मालय भी था। उसमें अपनी मौत मरे मवेशियों का चमड़ा कमाया जाता, और उसके चप्पल वग़ैरा बनाये जाते। जो ढोर क़त्ल किये जाते हैं, उनके चमड़े को काम में लाना, उनके क़त्ल में मदद पहुँचाना है। इसलिए आश्रमवासी इस अहिंसक चमड़े के जूते और चप्पल वग़ैरा ही काम में लाते हैं।

आश्रम की अपनी थोड़ी खेती-बाड़ी भी है। उसमें कुछ तो फलों के पेड़ लगाये गये हैं। कुछ साग-सब्ज़ी होती है, और खेतों में कुछ कपास व ज़ुवार वग़ैरा भी बोया जाता है।

इन सब कामों में आश्रम के भाई, बहन और बच्चे सभी पूरा-पूरा भाग लेते। वे बारी-बारी से कभी रसोईघर में काम करते, कभी गोशाला में गोबर उठाने जाते, कभी पाखानों की सफ़ाई करते, और कभी खेती-बाड़ी के काम में सहायक होते।

सुबह से शाम तक गांधीजी का आश्रम मधुमक्खी के छत्ते की तरह उद्योग से गूँजा करता। गांधीजी ने इसीलिए उसका नाम 'उद्योग-मंदिर' रख दिया, जो बहुत ही ठीक हुआ।

१६

नौकर

आम तौर पर लोग आजकल पानी भरने, बरतन मलने, झाड़ने-बुहारने, पीसने, रसोई बनाने, कपड़े धोने, कातने और पाखाना-सफ़ाई वग़ैरा करने से जी चुराते हैं, क्योंकि उनके ख़याल में ये सारे काम हलके हैं। फ़ुरसत रहते हुए भी वे इन कामों को हाथ नहीं लगाते, क्योंकि वे मानते हैं

कि ये सब हलके लोगों के करने लायक काम हैं। चुनाँचे वे इनके लिए नौकर रखते हैं, और उन नौकरों को हलका समझ कर उनके साथ ख़ुद हलकेपन का सलूक करते हैं।

गांधीजी किसी काम को हलका नहीं समझते। आश्रम शुरू करने से पहले भी उनके ख़याल इसी तरह के थे। यह नहीं कि उन्होंने कभी अपने घर में नौकर रक्खे ही न हों, पर नौकरों के साथ नौकर का-सा सलूक उन्होंने कभी नहीं किया।

बचपन में, जब वे बहुत छोटे थे, उनके घर रम्भा नाम की एक नौकरानी काम करती थी। गांधीजी आज भी उसे सगी माँ की तरह याद करते हैं। बचपन में इसी रम्भा ने गांधीजी को सिखाया था कि जब डर लगा करे, राम का नाम ले लिया करो; डर भाग खड़ा होगा। गांधीजी उसके इस उपदेश को अभी तक भूले नहीं हैं।

बैरिस्टरी पास करने के बाद गांधीजी कुछ दिन बम्बई में अपने कुनबे के साथ रहे थे। उस वक्त उन्होंने अपने यहाँ एक ब्राह्मण रसोइये को नौकर रक्खा था। ख़ुद विलायत से लौट कर आये थे। बड़ी

शान से अंग्रेज़ी ठाट-बाट में रहते थे। मगर नौकर को नौकर नहीं समझते थे। आधी रसोई महाराज बनाता, आधी .खुद बनाते, साथ में रसोइये को कुछ सिखाते भी जाते और उसके संग बराबरी से बैठ कर खाना खाते। नौकर के नाते उससे किसी तरह का भेदभाव न रखते।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी काफ़ी कमाते थे। वहाँ उनका परिवार भी बहुत बड़ा था। फिर भी कपड़े धोने, और पाख़ाना सफ़ाई करने का काम गांधीजी और कस्तूरबा अपने हाथों करते थे। घर में महरों और मुहर्रिरों की कमी न थी; लेकिन वे सब घर के आदमी ही समझे जाते थे और उनके साथ वैसा ही सलूक भी होता था।

आश्रमवासी बनने के बाद तो नौकर न रखने और सारा काम .खुद करने का नियम ही बन गया। जिनका सारा जीवन ही सेवा के लिए है, उनके लिए नौकर क्या और मालिक क्या ?

१७

इस पार गंगा : उस पार जमुना

गोकुल के बारे में कहा जाता है कि उसके इस पार गंगा और उस पार जमुना है, और दोनों के बीच में गोकुल की अपनी सुन्दर बस्ती है।

गांधीजी के आश्रम का भी यही हाल है। एक तरफ़ साबरमती का जेलख़ाना है, और दूसरी तरफ़ दूधेश्वर का मंदिर और मसान है।

गांधीजी ने आश्रम के लिए जो जगह चुनी, वह सत्याग्रहियों की शान को बढ़ानेवाली थी। उन्हें न तो जेल का डर रहता है, न मौत का खौफ़! दोनों चीज़ें उन्हें यकसाँ प्यारी हैं, और दोनों उनकी पड़ौसिन हैं।

जेल की तरफ़ इशारा करके गांधीजी आश्रम-वालों से अक़सर कहते: 'किसी दिन हमें भी वहाँ रहने जाना है। इसलिए जैसी कड़ी ज़िन्दगी जेल

में क़ैदियों को बितानी पड़ती है, वैसी यहाँ बिताना सीख लो।'

दूधेश्वर को दिखा कर वे कहते : 'जहाँ हम रोज़ हवाख़ोरी को जाते हैं, वहाँ एक दिन हमेशा के लिए जाने में डर कैसा ? हमारा फ़र्ज़ है कि हम देश के लिए मरने को हमेशा तैयार रहें।'

भला, ऐसी जगह में रहने की हिम्मत कौन कर सकता है ? वही न, जिसे देशसेवा का सबक़ सीखना हो, गांधीजी की सोहबत में रहना पसंद हो, और मेहनत-मशक़्क़त की सीधी-सच्ची ज़िन्दगी बिताने की लौ लगी हो।

१८

ज़िन्दा लाठियाँ

जब गांधीजी हवाख़ोरी को निकलते हैं, तो छोटे-बड़े कई बच्चे भी उनके साथ हो लेते हैं, और गांधीजी के साथ गपशप लड़ाने का मज़ा लूटते हैं।

मगर गांधीजी के साथ घूमने जानेवालों को दरअसल जो मज़ा मिलता है, वह तो कुछ और ही है। चलते समय गांधीजी को लाठी का सहारा तो चाहिए न? बस, ये बच्चे उनके अगल-बगल खड़े हो जाते हैं, और गांधीजी के दोनों हाथों को अपने कंधों पर ले लेते हैं।

यों दोनों तरफ़ दो ज़िन्दा लाठियाँ चलने लगती हैं, और बीच में गांधीजी बातचीत करते हुए हवा खाते चलते हैं।

गांधीजी इन बच्चों को अपनी ज़िन्दा लाठियाँ कहते हैं, और आश्रम के जिन बच्चों को यों अर्से तक बापू की लाठी बनने का मौक़ा नहीं मिलता, वे मन ही मन मुरझाये रहते हैं।

लेकिन यह न समझना कि बापू की लाठी बनना कोई आसान काम है ।

लोग शायद सोचते होंगे: 'गांधीजी बूढ़े हैं; धीमे-धीमे, डगमगाते हुए चलते होंगे ।' लेकिन बात ऐसी नहीं है । बापू को हमेशा 'डबल मार्च'की चाल से चलने की आदत है । ऐसे समय अगर उनकी ज़िन्दा लाठियाँ नन्हीं हुईं, तो बेचारियों को बरबस उनके साथ दौड़ना ही पड़ता है ।

इस तरह हवाख़ोरी की मस्ती में और बातों के सपाटों में अक़सर बच्चों को—बाल-लाठियों को—प्रार्थना के वक़्त का ख़याल भूल जाता है । लेकिन गांधीजी भला उसे क्योंकर भूलने लगे ? वे जब देखते हैं कि समय होने आया, तो झट दौड़ना शुरू कर देते हैं, फिर तो उनके साथ उनकी लाठियों को भी दौड़ना ही पड़ता है ।

१९

पोशाक का इतिहास

एक ज़माना था, जब गांधीजी कोट, पतलून और टोप पहनते थे। फिर उन्होंने कुर्त्ता और लुंगी पहनना शुरू किया। इसके बाद वे धोती, अँगरखा और साफा पहनने लगे। फिर खादी का पंचा, खादी का कुर्त्ता और खादी की टोपी उनकी पोशाक बनी। बताओ, आजकल वे क्या पहनते हैं?

खादी की एक लँगोटी!

गांधीजी ने समय-समय पर अपनी पोशाक में जितने फेर-बदल किये, उनका इतिहास बड़ा दिलचस्प और जानने लायक है।

अपनी जवानी के दिनों में वे दक्षिण अफ्रीका रहने गये थे। वहाँ वे बैरिस्टरी करते और दूसरे सभी वकील-बैरिस्टरों की तरह परदेशी ढंग की पोशाक पहनते थे।

दक्षिण अफ्रीका जाने के बाद गांधीजी ने देखा कि वहाँ हिन्दुस्तानियों का बेहद अपमान किया

जाता है। इस पर उन्होंने वहाँ के हिन्दुस्तानियों को सिखाने, पढ़ाने, संगठित करने और सत्याग्रह की .खूबियाँ समझाने का काम शुरू किया। उनकी सत्याग्रही सेना के सैनिकों में .ज्यादातर हिन्दुस्तान के ग़रीब मज़दूर ही थे। फिर यह कैसे हो सकता था कि इन मज़दूर सैनिकों का सत्याग्रही सरदार इनसे .ज्यादा अच्छी पोशाक पहनता, या .ज्यादा अच्छा खाना खाता? गांधीजी जैसा सरदार इस भेदभाव को क्योंकर बरदाश्त करता? बस, उन्होंने उन्हीं दिनों निश्चय कर डाला कि उनके मज़दूर भाई जैसे कपड़े पहनते हैं, वैसे ही वे भी पहनेंगे।

इन सत्याग्रही मज़दूरों में ज़्यादातर मज़दूर मद्रास के थे, जो सिर्फ़ कुर्ता और लुंगी ही पहनते थे। चूँकि गांधीजी इन्हीं सत्याग्रहियों के सरदार थे, इसलिए वे .खुद भी लुंगी और कुर्ता पहनने लगे, और विदेशी कोट-पतलून को धता बता दी।

जब दक्षिण अफ्रीका के हिन्दुस्तानियों की जीत हो गई, तो गांधीजी ने सोचा: 'अब मुझे अपने देश जाकर भारतमाता की सेवा करनी चाहिए'।

इसके साथ सवाल यह पैदा हुआ कि हिन्दुस्तान में पोशाक कैसी पहनी जाय? गांधीजी स्वभाव ही से सत्याग्रही हैं; इसलिए ऐसी छोटी-छोटी बातों में भी वे सत्य की छान-बीन करके ही क़दम बढ़ाते हैं। फिर यह कैसे हो सकता था कि वे किसी जैसी-तैसी पोशाक को पहन कर अपने देश में वापस आते? इस बार घर में विलायती कोट-पतलून पहन कर आना उन्हें रुचा ही नहीं। लुंगी परदेश में लुंगीवालों के साथ जँचती थी, अपने देश में वह क्योंकर जँचती?

आख़िर सोचते-विचारते उन्होंने तय किया कि अपनी जन्मभूमि काठियावाड़ की पोशाक पहन कर ही वे हिन्दुस्तान की भूमि पर पैर रक्खेंगे।

इस तरह जब गांधीजी अफ्रीका से हिन्दुस्तान लौटे, तो धोती, कुर्त्ते और अँगरखे के साथ माथे पर काठियावाड़ी फेंटा बाँधते और कन्धे पर दुपट्टा रखते थे।

२०

खादी

यह उन दिनों की बात है, जब गांधीजी को न तो चर्खा ही मिला था, और न उनके साथियों में कोई कातना ही जानता था। वह एक ऐसा ज़माना था, जब शुद्ध खादी का नाम भी किसीको मालूम न था। ये सारी बातें तो बाद में पैदा हुईं। इससे पहले गांधीजी देशी मिलों के कपड़े का ही उपयोग करते थे। बाद में उनके साथियों में से कुछ ने हाथ-कर्घे पर कपड़ा बुनना सीखा, और तबसे गांधीजी कर्घे का बुना हुआ मोटा कपड़ा पहनने लगे। लेकिन कर्घे के लिए भी सूत तो मिल का ही काम आता था। उन दिनों हाथ-कता सूत देता कौन?

यों होते-होते कई दिनों बाद बड़ी मुश्किल से गांधीजी को श्रीमती गंगाबहन मजमूदार मिलीं, जिनकी मदद से उन्होंने चर्खा पाया।

फिर तो वे और उनके कई साथी-संगी चर्खा चलाना सीखे, और यों चर्खे पर कता हुआ सूत बुना भी जाने लगा।

अब भला गांधीजी मिल के सूत का कपड़ा क्यों पहनने लगे? उन्होंने तभी से शुद्ध खादी के कपड़े पहनने शुरू कर दिये! वे खादी के कपड़े पहनने तो लगे, पर पहनते पूरी पोशाक थे। खादी की लम्बी धोती, खादी का कुर्त्ता, कुर्त्ते पर लम्बी बाँहों-वाला अँगरखा, सर पर खादी का लम्बा फेंटा और कन्धे पर खादी का दुपट्टा—यही उन दिनों की उनकी पोशाक थी। इतने सारे कपड़े पहन कर घूमना-फिरना उन्हें अच्छा तो न लगता था, फिर भी महज़ सभ्यता के ख़याल से वे इन कपड़ों को लादे रहते थे।

इतने में एक घटना ऐसी घट गई कि गांधीजी को अपना तरीक़ा बदल देना पड़ा। उन्होंने सोचा: 'इस झूठी सभ्यता के ख़ातिर मैं क्यों नाहक इतने कपड़े लादे फिरूँ? इन सबकी ज़रूरत ही क्या है'? बस, इसी घटना के कारण खादी की टोपी का जनम हुआ।

२१

खादी की टोपी

अहमदाबाद के मिल-मज़दूरों का मिल-मालिकों से झगड़ा हो गया। मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। अनसूयाबहन इन हड़तालियों की अगुआ बनीं। जहाँ अनसूयाबहन अगुआ हों, वहाँ गांधीजी न रहें, यह हो कैसे सकता था?

क़रीब एक महीने तक झगड़ा चला। गांधीजी रोज़ मजदूरों से मिलते और रोज़ उन्हें अपनी बातें समझाते।

ग़रीब मज़दूरों की रोज़ी मारी जा रही थी। उन्हें पेटभर खाने को नहीं मिलता था। फिर भी वे उत्साह के साथ गांधीजी की बातें सुनने आते थे, और अपनी हड़ताल पर चट्टान की तरह क़ायम थे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, गांधीजी मज़दूरों में, और मज़दूर गांधीजी में घुलते-मिलते गये।

दोनों में जो फ़र्क़ दिखाई पड़ता था, वह ख़ुद गांधीजी को ही अखरने लगा। उन्होंने सोचा: 'जब इन मज़दूरों के पास पहनने को पूरे साबुत कपड़े तक नहीं हैं, तब मुझे क्या हक़ है कि मैं अपने तन पर इतने सारे कपड़े लादे फिरूँ? मेरी इस लम्बी पगड़ी की दस टोपियाँ बन सकती हैं, और दस आदमियों के सिर ढँक सकती हैं।' बस, तभी से गांधीजी ने पगड़ी या फेंटा पहनना छोड़ दिया और टोपी पहनना शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी धोती का कपड़ा भी कम कर दिया। लम्बे अंगरखे को बेकार समझ छोड़ दिया, और आधी बाँहोंवाले छोटे कुर्त्ते से काम चलाने लगे। इस तरह जब गांधीजी ने पोशाक में भी मज़दूरों का ढंग अपना लिया, और ख़ुद मज़दूर से बन गये, तब कहीं उनकी सत्याग्रही आत्मा को तसल्ली हुई।

२२

सफ़ेद टोपी

जब गांधीजी ने पहले-पहल सफ़ेद टोपी पहननी शुरू की, तो लोगों को बड़ा अचरज हुआ।

लोग कहने लगे : 'सफेद टोपी? अजी, कहीं टोपी भी सफ़ेद हुई है? टोपी लाल हो सकती है, हरी हो सकती है, पीली या काली हो सकती है, मगर यह सफ़ेद टोपी कैसी? इसे टोपी कहेगा कौन?'

जब गांधीजी सफ़ेद टोपी पहन कर बाज़ार में निकलते, तो लोग एक-दूसरे को दिखा कर हँसते हुए कहते : 'अजी देखो तो, गांधीजी ने यह क्या पहना है?' कुछ मनचले मज़ाक भी उड़ाते। कहते : 'यह टोपी है, या काशी के पण्डे का कनटोप?'

लेकिन लोगों के इस हँसी-मज़ाक पर ध्यान देने की फ़ुरसत किसे थी? गांधीजी ने तो कभी इन बातों का ख़याल ही नहीं किया। वे कहते : 'लोगों को यह टोपी अच्छी नहीं लगती, भले न लगे। यह

तो मानना ही पड़ेगा कि इससे खादी की बचत होती है, और फिज़ूलखर्ची रुकती है'।

किसीने समझौता कराने की गरज़ से कहा: 'गांधीजी खादी की टोपी पहनना पसंद करते हैं, भले करें। पर सफ़ेद टोपी की यह ज़िद क्यों? क्या वे उसे रँगवा कर पहन नहीं सकते? सफ़ेद टोपी तो बहुत जल्द मैली हो जाती है।'

सच पूछो तो जितना मैल सफ़ेद पर जमता है, उतना ही काली पर भी; लेकिन काले में काला इस तरह छिप जाता है कि काली चीज़ मैली नहीं दिखाई पड़ती।

इसलिए गांधीजी का एक ही जवाब रहा: 'भई, मैल छिपाने के लिए रंगीन टोपी पहनने से बेहतर तो यह है कि मैली टोपी झट-झट धो डाली जाय। हमारी यह सफ़ेद टोपी रोज़ धुल सकती है, और रोज़ नई रह सकती है। हम उस पर मैल जमने ही क्यों दें?'

लोगों को बात जँच गई, और सफ़ेद टोपी जी गई!

२३

सफ़ेद टोपी ज़िन्दाबाद!

सफ़ेद टोपी लम्बी उमर लेकर जनमी थी। गांधीजी के समान अटल सत्याग्रही उसके जनक थे। फिर विरोध का पहाड़ भी टूट पड़े, तो उसकी बला से! वह क्यों मरने लगी?

मरना तो दर किनार, वह दिन दूनी, रात चौगुनी फलने-फैलने लगी!

हँसी उड़ानेवाले रफ़्ता-रफ़्ता चुप हो गये। सफ़ेद टोपी सबको जँच गई—पसन्द आ गई।

ग़रीबों ने सस्ती समझ कर उसे अपनाया।

सफ़ाई-पसन्द लोगों ने उसकी सफ़ाई को पसन्द किया और पहनने लगे। रोज धोओ, रोज़ साफ़! कम ख़र्च, बाला नशीं।

कवियों और कलाकारों ने भी उसे अपनाया: उसकी सुन्दरता की जी-भर सराहना की। पुरानी

टोपियों का काला-कलूटापन उनकी रसिक आँखों को अखरने लगा।

स्वयंसेवकों की तो वह राष्ट्रीय पोशाक ही बन गई।

बच्चे सफ़ेद टोपी पहन कर शान से घूमने लगे। उसे पहन कर वे अपने को भारतमाता का सिपाही समझने लगे।

यों होते-होते खादी की सफ़ेद टोपी का नाम उसके चलानेवाले के नाम पर मशहूर हो गया। अब वह गांधी टोपी कहलाने लगी।

२४

गांधी टोपी

सेठ—मुनीमजी, अबसे आप गांधी टोपी पहन कर न आया करिये।

मुनीम—सेठजी, आप तो ऐसी बात कह रहे हैं, जो मानी नहीं जा सकती।

सेठ—सो आप जानिये। लेकिन हमारे यहाँ गांधी टोपी नहीं चलेगी।

मुनीम—देखिये, मैं खादी के कपड़े पहनने का व्रत ले चुका हूँ। क्या व्रत तोड़ दूँ?

सेठ—आप खादी पहनिये: खादी पहनने से कौन रोकता है? हम कहते यही हैं कि रँगा कर पहनिये: काली, नीली, जैसी आपको पसन्द हो।

मुनीम—मुझे सफ़ेद पसन्द है, और मैं सफ़ेद ही पहनूँ, तो आपको कोई एतराज़ क्यों होना चाहिए?

सेठ—नौकरी करनी हो तो जैसा कहते हैं, कीजिये। सफ़ेद टोपी पहनने से आप स्वयंसेवक दिखाई पड़ते हैं। अगर किसीको मालूम हो जाय, कि हमारे यहाँ स्वयंसेवक नौकर है, तो हमारा बड़ा नुकसान हो सकता है।

मुनीम—साहब, यह सब मेरी समझ में नहीं आता। मैं आपकी नौकरी ईमानदारी से करता हूँ। आपको और चाहिए क्या? मैं सफ़ेद टोपी पहनूँ या काली, इसमें आपका नुकसान कैसा?

सेठ—देखिये मुनीमजी, नाहक मेरा दिमाग़ न चाटिये। यह गांधी टोपी है। अगर हमारे यहाँ कोई गांधी टोपीवाला रहा, तो बरबस लोगों का शक हम पर रहेगा।

मुनीम—अजी साहब, इसमें शक की क्या बात है? गांधीजी तो हमारे देश के सबसे पवित्र पुरुष हैं? उनके-जैसी पाक हस्ती और है किसकी?

सेठ—सो हो सकती है; लेकिन आप तो कल से गांधी टोपी छोड़ कर ही काम पर आइये।

मुनीम—टोपी तो मैं नहीं छोड़ सकूँगा।

सेठ—तो फिर नौकरी छोड़नी होगी।

मुनीम—जैसी आपकी मर्ज़ी।

सेठ—देखिये, फिर पछताइयेगा! इस मनहूस टोपी के पीछे नौकरी क्यों खोते हैं?

मुनीम—आपकी इस नेक सलाह के लिए मैं आपका बहुत ही एहसानमन्द हूँ। लेकिन पेट के ख़ातिर मैं अपने देश का और गांधीजी का अपमान सहना नहीं चाहता। नमस्कार!

ऊपर की बातचीत वैसे तो मनगढ़न्त है, लेकिन सरकारी दफ़्तरों में, परदेशी व्यापारियों की पेढ़ियों में, और कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियों की पेढ़ियों में भी ऐसी घटनायें सचमुच घट चुकी हैं।

बहादुर नौकरों ने नौकरी को ठुकरा दिया, पर गांधी टोपी को न छोड़ा।

वैसे देखा जाय, तो गांधी टोपी की क़ीमत सिर्फ़ चार आने हैं। लेकिन अब तो उसकी क़ीमत इतनी बढ़ चुकी है कि वह बेशक़ीमती ही नहीं, अमूल्य हो गई है।

उसकी पहली ख़ूबी यह है कि उसके चलानेवाले गांधीजी हैं।

दूसरी ख़ूबी यह है कि वह पवित्र खादी की बनती है।

तीसरी ख़ूबी यह है कि वह हमेशा बगुले के पर की तरह साफ़ रक्खी जा सकती है।

चौथी ख़ूबी यह है कि वह ख़ूबसूरत है।

पाँचवीं यह कि वह हलकी, सादी और सस्ती है।

छठी यह कि वह हमारी राष्ट्रीय पोशाक का नमूना है।

सातवीं यह कि उसका नाम गांधीजी के नाम के साथ जुड़ा हुआ है।

और बड़ी से बड़ी ख़ूबी यह है कि उसके लिए सैकड़ों देशभक्तों ने तरह-तरह की कुर्बानियाँ की हैं।

भला, ऐसी अनमोल गांधी टोपी को पहन कर किसे अभिमान न होगा?

सिर्फ़ कुर्त्ता

हमें गांधीजी का एहसान मानना चाहिए कि उन्होंने सिर्फ़ एक कुर्त्ता पहन कर घूमने-फिरने का रास्ता हमारे लिए खोल दिया।

जानते हो, पहले क्या होता था ?

बाप रे बाप ! सबके नीचे बनियान, उस पर कमीज़, कमीज़ पर जाकट और जाकट पर कोट।

इस सारे ठाठ के साथ जब दुपहर की गर्मी पड़ती थी, तो मज़ा आ जाता था। सारा बदन अन्दर से आलू की तरह सिज जाता और पसीना बदबू मारने लगता। लेकिन कोई माई का लाल ऐसा न था जो हिम्मत करके इन सबको ठुकरा देता और सीधी-सादी पोशाक में घर से बाहर निकलता।

अगर कोई बिना कोट पहने बाज़ार में चला आता, तो उस पर अँगुलियाँ उठतीं—उसकी पोशाक अधूरी मानी जाती। गर्मी बरदाश्त हो, चाहे न हो, कोट तो पहनना ही चाहिए। बिना कोट के पूरी पोशाक कैसी ?

बिना कोट के स्कूल में जाना तक मना था।

कोई अन्दर घुसने न देता। लोग कहते: "अधूरी पोशाक पहन कर पाठशाला में आना मना है।"

बिना कोट के कोर्टों और कचहरियों में कोई खड़ा न रहने देता। लोग कहते: "ऐसे जंगली आदमियों का यहाँ कोई काम नहीं।"

सब परेशान थे। सब तकलीफ़ पाते थे। पर जंगलियों में शुमार होने की हिम्मत कौन करे?

आख़िर सत्याग्रही गांधीजी ने यह हिम्मत दिखाई और सबके पहले सिर्फ़ कुर्त्ता पहन कर निकलना शुरू किया।

लोग हँसी उड़ाने लगे। गांधीजी कहते: "हँसनेवाले हँसा करें। दरअसल तो इस गरम देश में इतने कपड़े लाद कर फिरना ही जंगलीपन है। तिस पर हमारा यह देश इतना ग़रीब है। गरीबों के इस देश में ज़रूरत से ज़्यादा कपड़े पहनना भी एक पाप है।"

फिर तो सबमें हिम्मत आ गई। सब कोई सिर्फ़ कुर्त्ता पहन कर निकलने लगे। बड़े भी, बूढ़े भी, और बच्चे भी। बच्चे तो ख़ुश-ख़ुश हो गये!

खादी का कुर्त्ता और खादी की टोपी हमारी राष्ट्रीय पोशाक बन गई।

२६

भाषाओं का ज्ञान

वैसे गांधीजी कई भाषायें जानते हैं। पर उन्होंने पंडित बनने के ख़याल से कभी कोई भाषा नहीं सीखी। जो कुछ सीखा, सेवा के विचार से सीखा।

गुजराती तो उनकी अपनी ज़बान है—मातृ-भाषा है।

माता-पिता के कहने से अंग्रेज़ी उन्होंने स्कूल में सीखी; फिर विलायत गये, वहाँ सीखी। दक्षिण अफ्रीका में बरसों रहे, वहाँ वह पक्की हुई।

अफ्रीका में उन्हें मुसलमान भाइयों के बीच रहने और काम करने का मौक़ा मिला। उनकी सेवा करते-करते वे उर्दू बोलना और समझना सीख गये।

इसी तरह अफ्रीका में उन्हें मद्रासी मज़दूरों के साथ कामकाज पड़ा। वे लोग बहुत बड़ी संख्या में सत्याग्रही बन कर गांधीजी के साथ हुए। उनकी

सेवा के विचार से गांधीजी ने कामचलाऊ तामिल भी सीखी।

हिन्दुस्तान के कोने-कोने में अपना संदेश पहुँचाने के ख़याल से गांधीजी ने कई बार सारे देश का दौरा किया। इन दौरों में उन्हें राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दुस्तानी का महत्त्व पट गया। उन्होंने देखा कि किसी भी प्रान्त में जाकर वे हिन्दुस्तानी ज़बान में अपनी बात लोगों को समझा सकते हैं– लोग हर जगह हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं। पहले गांधीजी का हिन्दी-हिन्दुस्तानी का ज्ञान बहुत कच्चा था, लेकिन अब उन्होंने उस पर काफ़ी काबू हासिल कर लिया है।

गांधीजी इन भाषाओं को पढ़ कर नहीं सीखे। रोज़-रोज़ के अभ्यास से, अनुभव और तजरबे से सीख गये। अब भी जब कभी मौक़ा मिलता है, वे इनका अभ्यास बढ़ाने और इन्हें सुधारने की कोशिश ज़रूर करते हैं।

जब-जब लम्बी मुद्दतों के लिए उन्हें जेल में रहना पड़ा, उन्होंने तामिल और उर्दू सीखने की ख़ास कोशिश की।

कोई यह नहीं कह सकता कि गांधीजी मराठी ठीक-ठीक जानते हैं; फिर भी एक बार दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने गोखलेजी का एक भाषण मराठी में करवाया था, और ख़ुद दुभाषिया बन कर उसका तरजुमा किया था। उसके बाद तो वे कई साल यरवड़ा जेल में रहे, और अब सेवाग्राम में रहते हैं, इसलिए मराठी में भी काफ़ी तरक़्क़ी कर चुके हैं।

बचपन में थोड़ी संस्कृत वे स्कूल में सीखे थे। बाद में जेल जाने पर उन्होंने इस भाषा का वहाँ अच्छा अभ्यास बढ़ा लिया।

विलायत में रहते हुए गांधीजी ने यूरोप की पुरानी भाषा लैटिन का और वहाँ की राष्ट्रभाषा-जैसी फ्रेंच भाषा का भी कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अपनी मातृभाषा गुजराती का तो गांधीजी ने बहुत ही विकास किया है। उनकी भाषा सीधी, सरल, आडंबरहीन, तेजस्वी और भावों से भरी रहती है।

२७

ख़ूराक के प्रयोग

खाने-पीने के मामले में तरह-तरह के तजरबे करने का शौक़ गांधीजी को बचपन ही से है। अपनी ज़िंदगी में उन्होंने ऐसे अनगिनत प्रयोग किये हैं; अपने आप पर उन्हें आज़मा कर देखा है; और कई दफ़ा तो इसीकी वज़ह से अपनी जान को भी ख़तरे में डाला है।

उनका बड़े से बड़ा प्रयोग दूध का है। किसी भी चौपाये का दूध पीने में गांधीजी एक तरह का अधर्म और हिंसा महसूस करते हैं। वे सोचते हैं: भगवान् ने जो चीज़ दुधारु जानवरों के बछड़ों के लिए पैदा की है, उस पर अपना हक़ जमा लेना, इन्सान के लिए बहुत बड़ा पाप है—पाप माना जाना चाहिए। वैसे देखा जाय तो दूध की ख़ूराक को भी हम एक तरह का मांसाहार ही कह सकते हैं। जब इस तरह के ख़याल मज़बूत होते गये, तो गांधीजी

ने अपनी ख़ूराक में से दूध को हटा देने का, दूध छोड़ देने का, व्रत ले लिया ।

कई सालों तक उन्होंने दूध को छुआ तक नहीं। इसी अर्से में वे एक बार इतने सख़्त बीमार हुए कि बचने की कोई उम्मीद न रही। डॉक्टरों ने कह दिया कि अगर गांधीजी दूध लेना शुरू करेंगे तो मुमकिन है, बच जायँ ! आख़िर श्रीमती कस्तूरबा के समझाने और आग्रह करने पर गांधीजी ने बकरी का दूध लेना क़बूल किया, और अबतक वे बराबर बकरी का ही दूध लेते हैं ।

दूध के बारे में जो तजरबा उन्हें हुआ, उस पर से गांधीजी अब यह मानने लगे हैं कि बिना दूध के आदमी का काम चल नहीं सकता। लेकिन साथ ही उन्हें यह भी उम्मीद है कि किसी दिन कोई ऐसा वैज्ञानिक इस देश में जनमेगा, जो वनस्पति से दूध-जैसे गुणोंवाली ख़ूराक तैयार करके उसे लोगों के लिए सुलभ बना देगा ।

नमक के बारे में भी गांधीजी का यह ख़याल रहा कि इन्सान के लिए वह ज़रूरी नहीं है। और इसीलिए कई साल तक उन्होंने नमक नहीं खाया।

लेकिन बाद में उन्हें यक़ीन हो गया कि आदमी की ख़ूराक में इस चीज़ की भी ज़रूरत है, इसलिए फिर नमक खाना शुरू कर दिया।

गांधीजी का ख़याल है कि इन्सान की पूरी और सच्ची ख़ूराक फल ही है। मनुष्य के शरीर की बनावट, उसके हाथ-पैरों की गढ़न, उसके दाँत, उसका पेट, इन सबकी तासीर को देखते हुए साफ़ मालूम होता है कि भगवान् ने मनुष्य को फल खाने के लिए ही पैदा किया है। हम देखते हैं कि बन्दर, जो सूरत-शकल में आदमी से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, फल खाकर ही जीता है; इससे भी हमारी बात को बल मिलता है।

लेकिन जैसी ग़रीबी आज इस देश में है, उसमें यहाँ के लोग फल कैसे खा सकते हैं? शायद इसी ख़याल से गांधीजी ने मूँगफली, खजूर और केले-जैसे कुछ सस्ते में सस्ते फल खोज निकाले, और ख़ुद कई सालों तक इन्हीं फलों पर रहे।

खाना पकाने के बारे में भी गांधीजी का ख़याल है कि जिन तरीक़ों से वह आजकल पकाया जाता है, वे ठीक नहीं हैं। उनके विचार में दर असल तो

खाने की चीज़ों को आग पर चढ़ा कर पकाने की कोई ज़रूरत ही नहीं। जो फल सूरज की गर्मी में डाल पर पक जाते हैं, वे पूरी ख़ूराक का काम दे सकते हैं; उन्हें दुबारा आग पर पकाना उनको बेकस बनाना है।

एक बार गांधीजी को यह ख़याल सूझा कि अगर अनाज को भिगो कर अँकुवा लिया जाय, और उसको उसी रूप में खाया जाय, तो औरतों को चूल्हा फूँकने से छुट्टी मिल सकेगी और ख़र्च में भी काफ़ी बचत हो जायगी। भिगोया हुआ अनाज .ख़ूब चबा-चबा कर खाना पड़ता है, इसलिए पकाये हुए के मुकाबले में कम खाया जाता है।

अगर यह चीज़ सध जाय तो देश के ग़रीबों के लिए एक अच्छा वरदान बन सकती है। उन दिनों गांधीजी की तन्दुरस्ती इस लायक़ नहीं थी कि वे ऐसा ख़तरनाक तजरबा अपने उपर करते; लेकिन उन्होंने किया। कुछ महीनों के अनुभव के बाद जब यह भरोसा हो गया कि ऐसी .ख़ूराक को इन्सान आम तौर पर हमेशा हज़म नहीं कर सकता, उन्होंने इस चीज़ को भी छोड़ दिया।

लोग धान को कूट-खाँड कर चावलों को इतना सफ़ेद कर लेते हैं, कि वे बिलकुल बेकस हो जाते हैं, और फिर बड़े चाव से उन्हीं निकम्मे चावलों को खाते हैं। गेहूँ वग़ैरा नाज के चोकर को फेंक कर महीन मैदे-जैसा आटा खाने में शान समझते हैं। सच पूछा जाय तो भूसी और चोकर में नाज की असली ताक़त रहती है; उसको फेंक देने का मतलब है, रस को थूक कर गुठली चबाते बैठना। जबसे गांधीजी को इस सचाई का पता चला, वे बराबर यह कोशिश कर रहे हैं कि लोग हाथकुटे चावल और चोकरवाला हाथपिसा मोटा आटा खायें।

अब तो गांधीजी की तन्दुरुस्ती काँच के कंगन की तरह कमज़ोर पड़ गई है; फिर भी ख़ूराक के मामलों में उनकी दिलचस्पी क़ायम है, और छोटे-मोटे प्रयोग तो आज भी हर रोज़ चलते ही रहते हैं।

२८

कुदरती इलाज

बीमारी का नाम सुनते ही लोग अकसर हावरे-बावरे हो जाते हैं; हक़ीमों या डॉक्टरों के घर दौड़े जाते हैं; और उन्हींको अपना तारनहार समझ लेते हैं। भगवान की दी हुई इस देह को तन्दुरुस्त रखने या इस अनोखे यंत्र की बनावट को समझ लेने का हमारा अपना भी कुछ ज़िम्मा है, इस बात को हम आज भूल-से गये हैं। इसीलिए बीमारी भोग कर उठने के बाद जब चंगे हो जाते हैं, तो फिर मनमाना खाने-पीने लगते हैं, और मौज-शौक़ या भोग-विलास में डूब कर अपनी ज़िम्मेदारी को भूल जाते हैं।

इस बारे में गांधीजी के विचार ख़ासतौर से समझने लायक हैं।

पहली बात तो यह है कि बीमारी में घबराना न चाहिए। जो इलाज हो सकता है, वह ज़रूर

करना चाहिए; लेकिन डॉक्टर को भगवान् समझ लेने की भूल न करनी चाहिए।

दूसरे, जितनी बीमारियाँ हैं, वे अकसर खाने-पीने की गड़बड़ से ही पैदा होती हैं, इसलिए भरसक ऐसी गड़बड़ न होने देनी चाहिए।

इतने पर भी अगर बीमारी आ ही पड़े, तो अपने दिल को इस ख़याल से समझाना चाहिए कि बहुतेरी बीमारियाँ इसलिए भी आती हैं कि वे देहरूपी मशीन के कल-पुर्जों को बेजा बोझ से हलका कर दें, और उसे फिर से अच्छी तरह काम करने लायक बना दें। इसलिए बीमार पड़ते ही दवाइयों की बोतल पर बोतल खाली न करनी चाहिएँ, बल्कि बीमारी को अपना काम करने का मौक़ा देना चाहिए। इससे कुछ ही दिनों में रोग अपने आप मिट जाता है, और शरीर के दोषों को भी मिटने का मौक़ा मिलता है।

बीमारी में दवाइयों का सहारा लेने के बदले कुदरती इलाज करना गांधीजी को ज़्यादा पसंद है। गीली मिट्टी की पट्टी रखने से और पानी में कमर तक बैठने से (कटिस्नान से) बुरे से बुरा, ज़हरीला

बुख़ार और दूसरी बीमारियाँ मिट जाती हैं। गांधीजी बड़े शौक़ से इनका प्रयोग करते हैं।

अपने आप पर और अपने प्यारे से प्यारे स्वजनों पर भी उन्होंने कई बार ये प्रयोग किये हैं, और इनमें वे कामयाब भी हुए हैं।

सूरज की रोशनी में रहना और खुले आसमान के नीचे सोना भी गांधीजी के क़ुदरती इलाजों में शुमार हैं।

लेकिन उनका बड़े से बड़ा इलाज उपवास या फ़ाक़े का ही है। उन्होंने कई भाइयों और बहनों को बढ़ावा दे-दे कर अपनी देखरेख में उपवास करने को राज़ी किया है, और इस तरह उनको तन्दुरुस्त बनाया है।

जो लोग गांधीजी के पास रहते हैं, उन्हें अकसर यह देखने को मिलता है कि कई बीमारियाँ तो सिर्फ़ ख़ूराक में थोड़ा हेरफेर करने से दूर हो जाती हैं।

यों, सौ में अस्सी बीमारियाँ तो क़ुदरती इलाजों से ही दूर हो जाती हैं। इसलिए इन बीमारियों से घबरा कर सीधे डॉक्टर की शरण में जाना मनुष्य को शोभा नहीं देता।

फिर भी गांधीजी का ख़याल है कि चंद ज़हरीली या ख़तरनाक बीमारियों के लिए कुछ अचूक दवायें और होशियार सर्जनों की मदद, उनकी चीरफाड़, ज़रूरी है। ख़ुद गांधीजी को भी इस तरह के कई तजरबों में से गुज़रना पड़ा है।

मगर किसी भी हालत में बीमारी को देख कर बेकल हो जाना तो इन्सान की शान के ख़िलाफ़ ही है। गांधीजी के पुत्र श्री रामदासभाई ने और श्रीमती कस्तूरबा ने अपनी लम्बी और भयावनी बीमारी के दिनों में भी मांस का शोरवा लेने से इनकार कर दिया था। डॉक्टरों ने बहुतेरा कहा, पर दोनों ने हँसते-हँसते मर जाना पसंद किया, मगर मांस खाने से क़तई इनकार कर दिया। उनकी इस दृढ़ता को देख कर गांधीजी की आत्मा बहुत पुलकित हुई, और उन्होंने अपने इन प्यारे बीमारों को उनकी बहादुरी के लिए जी-जान से असीसा!

बीमारी के दिनों में घरवाले बाहर रह कर जितनी दौड़धूप मचाते हैं, उसके मुकाबले मरीज़ की जितनी प्यारभरी सेवा होनी चाहिए, नहीं होती। गांधीजी को बीमारों की सेवा का बड़ा शौक़ है। देश का

बड़े से बड़ा काम भी उनको अकसर इसके आगे फीका जँचता है। अपनी ताक़त भर वे बीमारों की सेवा के अवसर को हाथ से जाने नहीं देते। इसीलिए जो भाई-बहन बीमार पड़ कर उनकी निगरानी में अच्छे होते हैं, वे अपनी तक़दीर को सराहे बिना नहीं रहते। उन्हें अपना वह सौभाग्य कभी नहीं भूलता !

२९

दरिद्रनारायण के दर्शन

हिन्दुस्तान का दौरा करते-करते एक बार गांधीजी उड़ीसा पहुँचे।

उड़ीसा की ग़रीबी इस देश में एक कहावत बन गई है। सारी दुनिया में सबसे ग़रीब देश हमारा हिन्दुस्तान है, और उड़ीसा इसी हिन्दुस्तान का एक बहुत ही ग़रीब प्रान्त है। वहाँ आदमी नहीं रहते, जीवित नरकंकाल रहते हैं—हड्डियों के ज़िन्दा ढाँचे! अकाल कभी उनका पीछा नहीं छोड़ता। लोगों को शायद ही कभी दो जून भरपेट खाने को मिलता है। ऐसी हालत में तन ढँकने को कपड़े कहाँ से मिलें?

उड़ीसा की ग़रीबी की ये बातें गांधीजी ने सुनी तो बहुत थीं, मगर उस ग़रीबी को अपनी आँखों पहली बार इसी दौरे में देखा।

गांधीजी ग़रीब उड़ीसा के गाँवों में घूमे। गाँव क्या थे, खँडहरों की नुमाइश! बीच-बीच में टूटी-फूटी झोपड़ियाँ भी मिलती थीं, जिनमें भूख और प्यास से बेदम मर्द, औरत और बच्चे तड़पते पाये जाते थे। औरतों के बदन पर फटे-पुराने चिथड़े लिपटे थे। इन चिथड़ों की यह बिसात न थी कि उनके तन को पूरी तरह ढँके रहें! सिर्फ़ कमर का हिस्सा जैसा-तैसा ढँका मिलता था। बाक़ी के तन को ढँकने का, लाज को छिपाने का, कोई सामान न था।

इन दृश्यों को देख कर गांधीजी बहुत ही दुखी हुए।

'हे भगवन्! मेरे देश की ऐसी घोर ग़रीबी! क्या इस ग़रीबी को मिटाने के लिए मैं कुछ नहीं कर सकता?'

उस दिन मानो गांधीजी ने दरिद्रनारायण के सच्चे दर्शन किये।

हिन्दुस्तान के दूसरे सब सूबों के मुक़ाबले उड़ीसा के लिए गांधीजी के दिल में बड़ा दर्द है। उनकी करुणा पर उड़ीसा का बहुत बड़ा अधिकार है!

३०

लँगोटी

चम्पारन में किसानों को निलहे गोरों की ग़ुलामी से मुक्त करके गांधीजी वहीं गाँवों में रहने और गाँववालों की सेवा करने लगे।

एक दिन किसी गाँव में उन्होंने कुछ औरतों को बहुत ही गन्दी हालत में देखा। गांधीजी ने कस्तूरबा से कहा कि वे जायें और उन बहनों को रोज़ नहाना और धुले हुए कपड़े पहनना सिखायें।

बा गईं। उन्होंने उन बहनों से बातचीत की। उन्हें समझाया: 'बहनो, आपको अपने कपड़े रोज़ धोने चाहिएँ। धोने-धाने में इतनी सुस्ती न करनी चाहिए।'

जो बहनें गन्दे कपड़े पहने थीं, उन्होंने कस्तूरबा को एक नज़र देखा। फिर उनमें से एक बहन ने कहा: 'माताजी, आप अंदर चलिये, और इस मढ़ैया को एक निगाह देख लीजिये।'

बा उस बहन के साथ अन्दर गई। झोंपड़ीवाली ने कहा: 'माताजी, आप इसे अच्छी तरह देख लीजिये। क्या इसमें कहीं कपड़ों से भरी कोई सन्दूक या आलमारी नज़र आती है? कुछ है ही नहीं! बदन पर पड़ी हुई यह साड़ी ही सब कुछ है। अब बताइये, इसे कब धोऊँ? कब बदलूँ? कैसे बदलूँ? आप महात्माजी से कहिये, वे मेरे लिए एकाध साड़ी और भेजवा दें! फिर मैं रोज़ नहाऊँगी। रोज़ धुला हुआ पहनूँगी और साफ़-सुथरी रहूँगी।'

गांधीजी ने देश की ग़रीबी को कई बार अपनी आँखों देखा था; लेकिन जब बा के मुँह से यह दर्द-भरा क़िस्सा सुना, तो उन्हें उस ग़रीबी की गहराई का ठीक-ठीक अन्दाज़ हो आया।

यह ग़रीबी कैसे दूर हो? उस झोंपड़ीवाली को एक साड़ी और दिला देने-मात्र से सवाल हल नहीं हो जाता। उसके जैसी तो देश में अनगिनत हैं—लाखों, करोड़ों!

इन सब मुसीबतों का एक ही इलाज है—स्वराज्य: अपना राज्य। जब गांधीजी स्वराज्य के लिए सरकार से जूझते हैं, तो उनके दिल में

इन्हीं करोड़ों झोंपड़ीवाली बहनों की याद बनी रहती है।

एक अर्सा हुआ, गांधीजी ने ऐसा ही एक जंग सरकार के साथ छेड़ा था। उसका ख़ूब रंग जमा। लोगों के जोश का ठिकाना न रहा। इसी दरम्यान एक दिन एक ख़ास घटना घट गई। सरकार ने गांधीजी के परम मित्र और साथी मौलाना महम्मदअली को गिरफ़्तार कर लिया।

आन-बान के इस मौक़े पर गांधीजी को उन ग़रीब और गंदग़ी में रहनेवाली बहनों की याद फिर आ गई! उन्होंने उसी दम यह प्रतिज्ञा की—व्रत लिया: 'जब तक इस देश में स्वराज्य का सूरज नहीं उगता, और मेरी भारतमाता की देह पूरी तरह कपड़ों से नहीं ढँकती, मैं अपनी देह पर तीन-तीन कपड़े न लादूँगा। लाज ढाँकने को एक लँगोटी-भर मेरे लिए काफी है।'

और तबसे वे सिर्फ़ लँगोटी ही पहनते हैं।

३१

रेल-घर : रेल-आश्रम

बड़ौदा के गायकवाड़ों के झण्डे पर ज़ीन-घर, ज़ीन-तख़्त लिखा रहता है। पुराने ज़माने में मराठा सरदारों को इस बात का बड़ा अभिमान था कि उनके घोड़ों पर रात-दिन काठी कसी रहती है।

यही हाल गांधीजी का रहा है। उनका घर, उनका आश्रम, जो कुछ कहो, रेलगाड़ी के तीसरे दर्जे का डब्बा है। देश के इस कोने से उस कोने तक अपना सन्देश सुनाने के लिए उन्हें बरसों लगातार घूमना पड़ा है। महीनों सफ़र में रहना पड़ा है, और इस हद तक रहना पड़ा है कि वे ज़्यादा रेल में रहे या आश्रम में, कहना मुश्किल है। ऐसी हालत में रेलगाड़ी के डब्बे को ही उनका घर या आश्रम कहा जाय तो क्या बुराई है?

और, गांधीजी भी गाड़ी के डब्बे को अपना घर समझते हैं। उस पर सवार होकर घर ही की

तरह सारा काम करते हैं। उसमें बैठ कर वे चर्खा चलाते हैं। सुबह-शाम की प्रार्थना करते हैं। पुस्तकें पढ़ते, चिट्ठी-पत्री लिखते और मिलने आनेवालों से मिलते-बोलते हैं।

गांधीजी हमेशा तीसरे दर्जे में सफ़र करते हैं। बीमारी या कमज़ोरी की वजह से जब कभी उन्हें ऊँचे दर्जे में सफ़र करना पड़ता, उनका दिल बहुत दुखी रहा करता। मन में रह-रह कर एक खयाल आता, जो उन्हें बेचैन बना जाता: 'मैं अपने को ग़रीबों का सेवक मानता हूँ। वे तीसरे दर्जे की परेशानियाँ उठाते हैं, और मैं उनसे अलग ऊँचे दर्जे के गद्दों पर आकर बैठता हूँ। क्या यह उचित है? मुनासिब है?'

हमारे देश में तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को जो मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, वे दुनिया से छिपी नहीं। लोगों के साथ ख़ुद भी उन्हीं मुसीबतों का सामना करके गांधीजी खुश होते हैं। जब वे 'महात्मा' नहीं बने थे, और इतने मशहूर भी नहीं थे, ऐसी परेशानियाँ उन्होंने ख़ूब उठाई थीं, और बड़े शौक़ से उठाई थीं। अकसर उन्हें मुसाफ़िरों की भीड़ के

बीच खड़ा रह जाना पड़ता; घण्टों खड़े-खड़े सफ़र करना पड़ता; कभी-कभी धक्के भी खाने पड़ते; ऐसी हालत में सोने या काम करने की सहूलियत तो उन्हें कौन देने लगा ?

उन दिनों देश के बड़े-बड़े नेता भी आम रिआया से दूर-दूर रहते और ग़रीबों या मैले-कुचैले लोगों के साथ मिलने में शरम-सी महसूस करते। बड़े-बड़े सरकारी अफ़सरों की तरह वे भी रेल के पहले या दूसरे दर्जे में ही सफ़र करते। शायद इसीमें वे अपनी शान भी समझते थे। ऐसे समय अकेले गांधीजी का तीसरे दर्जे में सफ़र करना एक अचरज की बात थी। गांधीजी बैरिस्टर थे। दक्षिण अफ्रीका में रह चुके थे और देश के नेता माने जाते थे।

एक बार गांधीजी कलकत्ते में स्वर्गीय श्री गोखलेजी के घर ठहरे थे। जब बिदा होने लगे, तो गोखलेजी उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने चले। गांधीजी ने कहा : 'आप क्यों तकलीफ़ करते हैं? रहिये, मैं चला जाऊँगा।' गोखलेजी न माने। उन्होंने जवाब दिया : 'अगर आप औरों की तरह ऊँचे दर्जे में सफ़र करते, तो मैं घर ही रहता; लेकिन आप तो

तीसरे दर्जे में बैठनेवाले हैं; इसलिए मैं समझता हूँ, मुझे आपके साथ स्टेशन चलना ही चाहिए।'

उस ज़माने में गांधीजी की ऐसी क़द्र करनेवाले गोखलेजी-जैसे कुछ इने-गिने लोग ही होते थे। आमतौर पर तो मज़ाक उड़ानेवालों की तादाद ही ज़्यादा थी।

यों तीसरे दर्जे की मुसीबतें उठाते-उठाते गांधीजी को अपने देश की दीन-हीन जनता का ख़ूब अच्छा परिचय हो गया। उसे नज़दीक से देखने, उसकी कमज़ोरियों, ख़ूबियों, ख़ासियतों और आदतों को समझने, उसकी रग-रग से वाक़िफ़ होने का उन्हें बड़ा अच्छा मौक़ा मिला। अपने देशवासियों की नब्ज़ को जितना गांधीजी पहचान पाये, उतना शायद ही कोई दूसरा नेता पहचान सका हो। इसीलिए आज वे देश के सच्चे हक़ीम बन सके हैं, और उन्होंने जो नुस्ख़ा दिया है, वह इस बीमार मुल्क के लिए मुफ़ीद साबित हुआ है। यही वजह है कि आज छोटे से लेकर बड़े तक सभी कोई गांधीजी को बहुत गहरी इज़्ज़त और श्रद्धा की नज़र से देखते हैं।

३२

जेल-महल

जेलखाने को गांधीजी सिर्फ़ जेलखाना नहीं कहते, वे उसे जेल-महल या जेल-मंदिर कहते हैं।

जो जेलखाने से डरते हैं, वे तो जेलखाने का नाम सुनते ही काँप उठते हैं। ऊँची-ऊँची दीवारें, बड़े-बड़े दरवाज़े, काले-काले भयानक पहरेदार, हथ-कड़ियों और बेड़ियों की झनकार! तिस पर राक्षस-जैसी बड़ी-बड़ी चक्कियाँ चलाना, बैल बन कर चड़स का पानी खींचना और कोल्हू में बैल की तरह जुतना। इनमें ज़रा कहीं कसूर हो गया, चूक हो गई, तो दारोग़ा के डण्डों से पिटना।

यह है जेलखाने की तसवीर! इन जेलखानों में एक दफ़ा बन्द हो जाने के बाद फिर न तो बाहर की दुनिया की कोई चीज़ देखने को मिलती है, न बाहर का कुछ सुनाई पड़ता है।

बड़े-बड़े चोर और लुटेरे भी क़ैदख़ाने के नाम से काँप उठते हैं।

लेकिन गांधीजी को वह ज़रा भी डरावना नहीं मालूम होता। वे उसे महल समझते हैं। मन्दिर कह कर उसकी महिमा बढ़ाते हैं। वे कई दफ़ा इस महल के मेहमान रह चुके हैं, और देश के सैकड़ों-हज़ारों सत्याग्रहियों के लिए इस महल के दरवाज़े उन्होंने खुले छुड़वा दिये हैं। लोग निधड़क अन्दर चले जाते हैं, और हँसते-हँसते वापस लौट आते हैं।

जो देश की सेवा के लिए जेल जाते हैं, वे भला जेल से डरें क्यों? उन्हें तो जेलखाने में ख़ुशी ही होती है।

ज़ेल में एक बार दाख़िल होने के बाद फिर इन्सान को कोई फिकर ही नहीं रह जाती। खाने का वक़्त हुआ, खाना तैयार; पहनने को कपड़े चाहिएँ, कपड़े तैयार; दारोग़ा चौबीसों घण्टे आपकी ख़िदमत में तैयार! हिफ़ाज़त के लिए पहरेदार हाज़िर! सन्तरी रात और दिन संगीन लिए खड़ा पहरा देने को हाज़िर!

दिन में ख़ूब मेहनत करनी पड़ती है: रात में खर्राटे की मीठी नींद आती है।

ऐसा सुख तो राजा को अपने राजमहल में भी नसीब नहीं होता। उस बेचारे को मारे फिकर के न खाना अच्छा लगता है, और न वह रात को सुख की नींद सो पाता है।

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में थे, तो वे वहाँ के जेलखानों के भी मेहमान रह चुके थे। हिन्दुस्तान आने के बाद यहाँ भी वे कई बार जेल हो आये हैं। कभी साबरमती के जेलखाने को महल बना कर रहे, तो कभी पूना के पास यरवड़ा को मन्दिर मान कर रहे।

जेलवाले बेचारे उन्हें जेल में रखते शरमाते हैं। मगर क्या करें, हुकुम के चाकर जो ठहरे!

३३

तीन प्रतिज्ञायें

मोहनदास अब बड़े हो चुके थे। मैट्रिक पास कर चुके थे।

मावजी दवे ने कहा: 'मोहनदास को विलायत भेज दो। वह बैरिस्टर बन कर आयेगा, और अपने बाप की जगह सँभालेगा।'

पर विलायत जाना आसान न था। पिताजी राज के दीवान तो रह चुके थे, लेकिन पैसा कुछ छोड़ नहीं गये थे। राज की तरफ़ से मदद पाने की कोशिश की, मगर उसमें कामयाबी न मिली। बड़े भाई दिल के बहुत उदार थे। उन्होंने किसी भी तरह रुपयों का बन्दोबस्त करने का बीड़ा उठाया।

लेकिन विलायत जाने में एक और भी रुकावट थी। उन दिनों समुद्रयात्रा करनेवालों का धर्म नष्ट हो जाता था! जात-बिरादरीवाले ऐसों को अपने साथ बैठाते नहीं थे। यह एक बड़ा बैंडा सवाल था।

माता पुतलीबाई ने कहा: 'नहीं, मेरा मोहन विलायत नहीं जायगा। विलायत जाने से जात जाती है। शराब पीने, मांस खाने और कुचाल चलने का डर रहता है। विलायत जाना अपना काम नहीं।'

इस पर जान-पहचान के एक साधु ने रास्ता सुझाते हुए कहा: 'माई, अगर मोहन प्रतिज्ञा कर ले और वहाँ जाकर अपनी मरजाद से रहे, तो क्या हर्ज है?'

माताजी ने कहा: 'नहीं फिर तो कोई हर्ज नहीं रहता।'

साधु ने मोहनदास से कहा: 'मोहन, बोलो माताजी के सामने तीन प्रतिज्ञायें लेनी होंगी। लोगे?'

'कैसी प्रतिज्ञायें?'

'पहली, शराब नहीं पीयोगे। दूसरी, मांस नहीं खाओगे। तीसरी, पराई औरत को माँ-बहन समझोगे। बोलो, मंज़ूर हैं, ये तीन बातें?'

'जी हाँ, मंज़ूर हैं, दिल से मंज़ूर हैं।'

'तो फिर आ जाओ सामने, और माँ के चरण छूकर कहो।'

गांधीजी ने माताजी के चरणों में झुकते हुए कहा: 'माताजी, मैं शराब नहीं पीयूँगा; मांस नहीं खाऊँगा, पराई स्त्री को माँ-बहन के समान समझूँगा।'

गांधीजी के जीवन में प्रतिज्ञाओं या व्रतों का बड़ा महत्त्व रहा है। वे बचपन से इनमें मानते आये हैं। उनका विश्वास है कि कमज़ोरी की घड़ियों में ये प्रतिज्ञायें ही मनुष्य को गिरने से बचाती हैं, और उसे मुक़ाम से हटने नहीं देतीं।

कहा जो है:

चन्द टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द कौ, टरै न सत्य विचार॥

३४

'कुली' बैरिस्टर

गांधीजी विलायत गये। बैरिस्टर बने। वापस हिन्दुस्तान आये और हिन्दुस्तान से धन कमाने दक्षिण अफ्रीका गये। गांधीजी को अपनी जान-पहचान के एक मेमन व्यापारी के यहाँ काम मिला, और वे उस व्यापारी के नौकर बन कर वहाँ पहुँचे।

वह एक बिलकुल अनजान देश था। गांधीजी वहाँ धन कमाने गये थे। लेकिन दर असल जो चीज़ उन्होंने वहाँ कमाई, उसका तो शायद किसीने सपना भी नहीं देखा था। वह एक अजीब चीज़ थी, और अजीब ढंग से कमाई गई थी।

अफ्रीका की ज़मीन पर क़दम रखते ही न जाने क्यों वहाँ की आबोहवा में गांधीजी का दम घुटने-सा लगा। वहाँ क़दम-क़दम पर हिन्दुस्तानियों को बेइज्ज़त होना पड़ता था। इसमें छोटे-बड़े या अमीर-ग़रीब का कोई भेद न था।

बहुतेरे हिन्दुस्तानी उस मुल्क में मज़दूर या कुली के नाते गये थे, इसलिए वहाँ के गोरे लोग उनसे नफ़रत करते और उन्हें 'कुली' कहते थे। वहाँ जाकर हिन्दुस्तानी व्यापारी 'कुली व्यापारी', हिन्दुस्तानी वकील 'कुली वकील', और हिन्दुस्तानी बैरिस्टर 'कुली बैरिस्टर' कहलाता था। गांधीजी भी 'कुली बैरिस्टर' कहलाये।

वहाँ के गोरे हिन्दुस्तानियों को अपनेसे हलका मानते और उनसे मिलना-जुलना अपनी शान के खिलाफ़ समझते थे। वे हिदुस्तानियों को अपने साथ उठने-बैठने भी न देते। विक्टोरिया में, ट्राम में, रेलगाड़ी में और होटलों में, कहीं कोई हिन्दुस्तानी उनके साथ बैठ नहीं सकता था। किसी हिन्दुस्तानी 'कुली' को अपने साथ रास्ते में पैदल चलते देख कर भी वे आग-भभूका हो जाते थे। जहाँ इतनी नफ़रत थी, वहाँ हिन्दुस्तानियों को किसी उत्सव या जलसे में बुलाने की या उनकी आवभगत करने की, तो बात ही क्या?

पढ़े-लिखे और धनवान हिन्दुस्तानी भी इन अपमानों को सहने के आदी हो चुके थे। परदेश

में मान-अपमान का ख़याल न कर चुपचाप धन कमाने और देश में जाकर इज्ज़तदार कहलाने का रास्ता सब अख़्तियार कर चुके थे।

लेकिन गांधीजी इसे बरदाश्त न कर सके! जाते ही पग-पग पर उनका अपमान होने लगा। दूसरे हिन्दुस्तानियों की तरह वे इन अपमानों को सह न सके। उन्होंने विरोध शुरू किया, और सर उठा कर, सीना तान कर चलने लगे। बदले में उनको गालियाँ, धक्के, और लातें मिलीं। गांधीजी ने गाली का जवाब गाली से, धक्के का धक्के से, और लात का लात से देना मुनासिब न समझा। वे अपमानों से डरे नहीं, और डरानेवालों के सामने झुके नहीं।

एक दिन बैरिस्टर गांधी अपने किसी मित्र के साथ डरबन गये। डरबन अफ्रीका का एक शहर है। मित्र ने उन्हें वहाँ की अदालत दिखाई।

उन दिनों गांधीजी निहायत टीमटाम से रहते, और बड़े शौक़ से अंग्रेज़ी पोशाक पहनते थे; लेकिन माथे पर तब भी वे हिन्दुस्तानी पगड़ी ही रखते थे। डरबन की अदालत में भी वे उस दिन वैसी ही पगड़ी पहन कर गये और वकीलों के साथ बैठे।

जज साहब को इस नई सूरत के रंगढंग पर अचरज हुआ। उन्होंने घूर कर गांधीजी को देखा और सोचा : 'यह कुली बैरिस्टर माथे पर पगड़ी पहने बैठा है, और अदालत का अपमान कर रहा है।'

कुछ देर तक घूरने के बाद उन्होंने गांधीजी से कहा : 'अपनी पगड़ी उतार दीजिये।'

गांधीजी इस अपमान को सह न सके। तिलमिला उठे। उन्होंने सोचा : 'पगड़ी उतारने से बेहतर है, सिर उतार कर दे देना।'

गांधीजी ने पगड़ी उतारने से इनकार कर दिया। वे अदालत का दीवानखाना छोड़ कर बाहर चले आये।

३५

हाथ पकड़ कर उतारा

गांधीजी को डरबन से प्रिटोरिया जाना था। उन्होंने पहले दर्जे का टिकट कटाया और रेल पर सवार हुए।

जब घर से चलने लगे, तो लोगों ने समझाया और कहा: 'देखिये गांधीजी, यह हिन्दुस्तान नहीं है। यहाँ हम लोगों को कोई पहले दर्जे में बैठने नहीं देता। हम कहते हैं: 'ख़बरदार! आगे आप जानिये।'

गांधीजी ने किसीकी सुनी नहीं। उन दिनों वे मानते थे कि बैरिस्टरी की शान बनाये रखने के लिए पहले दर्जे में बैठना ज़रूरी है।

कुछ दूर तक किसीने कोई छेड़छाड़ न की। रात को क़रीब नौ बजे गाड़ी मैरित्सबर्ग नाम के स्टेशन पर खड़ी हुई। यहीं से एक गोरा मुसाफ़िर गांधीजी के डब्बे में बैठा।

मगर वह बैठे क्योंकर ? बैठते ही वह तो चकरा गया। उसने देखा, गज़ब हो गया: पहले दर्जे में और कुली !

गोरा मुँह से कुछ न बोला। फौरन उतर कर नीचे गया और स्टेशन के एक-दो अफ़सरों को बुला लाया। अफ़सर आये, टुकर-मुकर देखा किये, मगर हिम्मत न हो कि कुछ कहें। आख़िर एक अफ़सर ने गांधीजी के पास जाकर कहा—'सामी ! ज़रा सुनो, तुम्हें आख़िरी डब्बे में जाना होगा।' गांधीजी ने कहा—'मेरे पास पहले दर्जे का टिकट जो है।'

'कोई हर्ज नहीं, टिकट रहने दो। मगर मैं कहता हूँ कि तुम्हें आख़िरी डब्बे में जाना होगा।'

'मैं भी कहता हूँ कि मैं डरबन से इसी डब्बे में बैठाया गया हूँ, और इसीमें जानेवाला हूँ।'

जवाब सुन कर अफ़सर तो दंग रह गया ! 'एक गोरे अफ़सर की शान में एक कुली की यह हिम्मत ?' अफ़सर ने रोब गाँठते हुए कहा: 'हरगिज़ नहीं ! तुम्हें उतरना ही होगा; नहीं, सिपाही आकर तुम्हें उतार देगा।'

गांधीजी ने भी साफ़ कह दिया: 'अच्छी बात है, आने दीजिये सिपाही को। मैं अपनी मर्ज़ी से नहीं उतरूँगा।'

अफ़सर चिल्लाता हुआ गया और सिपाही को बुला लाया। आते ही सिपाही डब्बे में घुसा, हाथ पकड़ कर गांधीजी को धकेला, नीचे उतारा, और सामान उठा कर बाहर फेंक दिया।

गांधीजी इस समय आपे में न थे। वे सिर से पैर तक हिल उठे थे। ख़ून खौल रहा था। वे न तो दूसरे डब्बे में गये, न उन्होंने सामान ही छुआ। प्लैटफार्म पर खड़े रहे, सो खड़े ही रहे, और गाड़ी चल दी।

सारी रात प्लैटफार्म पर पड़े रहे। कड़ाके की सर्दी थी। साथ में ओवरकोट था। लेकिन फेंके हुए सामान को आँख उठा कर देखने का भी दिल न होता था। कहीं सामान लेने बढ़े और फिर बेइज़्ज़ती हुई तो? बस, सारी रात ठण्ढ में ठिठुरा किये मगर सामान को हाथ न लगाया।

जाड़ा खाते-खाते दिल में कई तरह के ख़याल आये और चले गये।

'रेल में बैठ कर आगे जाने और फिर बेइज्ज़त होने से फ़ायदा क्या ? बेहतर तो यह कि है वापस लौट जाऊँ।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? जिसका बीड़ा उठाया, उसे अधबीच में कैसे छोड़ा जा सकता है ?'

'इस देश में रह कर धन कमाने से फ़ायदा क्या ? बेहतर है कि हिन्दुस्तान वापस चला जाऊँ।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह तो डरपोकों का काम है। क्या तू डरपोक है ?'

'तो क्यों न गोरे सिपाही और गोरे अफ़सर पर मुक़द्दमा चलाऊँ, और यों दोनों को उनकी हिमाक़त का सबक़ सिखाऊँ ?'

'फिजूल की बात है। इससे होगा क्या ? यहाँ के तमाम हिन्दुस्तानियों के सर 'कुलीपन' का जो कलंक लगा हुआ है, क्या वह इससे धुलेगा ?'

इस तरह सोचते-सोचते गांधीजी ने अपने मन को समझा लिया और अपमान की इस कड़वी घूँट को पीकर रह गये।

३६
शिकरम की बीती

प्रिटोरिया का रास्ता मुसीबतों का रास्ता साबित हुआ। एक का किस्सा सुन चुके। दूसरी का सुनिये। उन दिनों चार्ल्सटाउन से जोहानिसबर्ग तक रेल न थी। शिकरम चलती थी।

गांधीजी ने शिकरम के लिए बाक़ायदा टिकट ख़रीदा। पर ज्यों ही शिकरम पर सवार होने चले, गोरे शिकरमवाले ने रोका। बोला: 'सामी! तुम्हें नहीं बैठायेंगे। तुम्हारा टिकट पुराना है। कल का है।'

उसने सोचा: 'परदेशी आदमी है, अजनबी है, बहाने से काम चलता हो तो क्यों न चला लूँ?' मगर दर असल उसकी नीयत कुछ और ही थी। वह नहीं चाहता था कि अपनी शिकरम में गोरे मुसाफ़िरों के साथ काले कुली को बैठावे।

लेकिन यह झाँसेबाजी क्योंकर चले? आख़िर शिकरम के अन्दर गोरों के साथ तो नहीं, बाहर कोचवान की बराबरी से गांधीजी बैठाये गये। गांधीजी

बहुत सिटपिटाये—मन में उथल-पुथल मच गई : 'मैं यहाँ क्यों बैठूँ ? मुझे अन्दर क्यों नहीं बैठाया जाता ?'

लेकिन इस अपमान को भी वे पी गये और बाहर कोचवान के पास जा बैठे।

कुछ ही दूर गये थे कि मुसीबत शुरू हुई। शिकरम का गोरा मालिक साथ में था। उसकी इच्छा हुई कि वह बाहर बैठे और बीड़ी पीये। शायद हवा खाने का भी दिल रहा हो। लेकिन बाहर तो गांधीजी बैठे थे। गोरे ने, अपनी जान, इसका भी रास्ता निकाल लिया। कोचवान के पास टाट का एक गन्दा-सा टुकड़ा पड़ा था। गोरे ने उसे लेकर पैर रखने के पटिये पर फैला दिया और गांधीजी से बोला : 'ऐ सामी, तू यहाँ बैठ! मैं कोचवान की बराबरी से बैठूँगा।'

सुनते ही गांधीजी तिलमिला उठे। सामने पहाड़-सा ऊँचा-पूरा और मज़बूत गोरा था, और मुकाबले में दुबले-पतले और अकेले गांधीजी थे। मामला टेढ़ा था, मगर गांधीजी डरे नहीं। क्या डर कर अपमान सह लेते ?

गांधीजी ने साफ़ कह दिया: 'देखिये, आप की पहली ग़लती तो यह है कि आपने मुझे यहाँ बैठाया। मैंने भी ज़िद नहीं की, बैठ गया। अब आप बाहर बैठना चाहते हैं, आपको बीड़ी पीनी है। बैठिये, पीजिये! मगर मुझसे क्यों कहते हैं कि मैं आपके पैरों में बैठूँ? मैं अन्दर शिकरम में जाने को तैयार हूँ। आपके पैरों तले हरगिज़ न बैठूँगा।'

गांधीजी अभी अपनी बात भी पूरी नहीं कर पाये थे, कि गोरा भिन्ना उठा। उसने तड़ातड़ तमाचे जड़ने शुरू कर दिये, और हाथ पकड़कर उन्हें नीचे घसीटने लगा। गांधीजी ने बैठक के पास लगे हुए पीतल के सीखचों को कटकटा के पकड़ लिया और मन में तय कर लिया कि चाहे हाथ उखड़ जायँ, पर सलाइयाँ नहीं छोड़ूँगा।

गोरा गालियाँ दे रहा था; घसीट रहा था; और गांधीजी सीखचों को पकड़े अड़े थे। न कुछ बोले, न अपनी जगह छोड़ी। दूसरे गोरे मुसाफ़िरों ने जब देखा कि मामला बढ़ रहा है, तो बाहर आये, बीच-बचाव किया, शिकरमवाले को बुरा-भला कहा और गांधीजी को छुड़ाया।

३७

धक्का

प्रिटोरिया में गांधीजी रोज़ शाम को घर से हवाख़ोरी के लिए निकलते और खुले मैदान में टहल कर लौट आते।

सड़क के किनारे, दोनों ओर, पैदल चलनेवालों के लिए पक्का रास्ता बना था। गांधीजी इसी रास्ते रोज़ आते जाते थे। इसी रास्ते पर प्रिटोरिया के प्रधान मंत्री मिस्टर क्रूगर का मकान था। एक मामूली-सा सीधा-सादा मकान; मगर दरवाज़े पर सन्तरी का पहरा था; इसीसे लोग समझते थे कि किसी आला अफ़सर का मकान है।

गांधीजी हमेशा इसी रास्ते जाते थे; हमेशा प्रधान मंत्री मिस्टर क्रूगर के घर के सामने से गुज़रते थे। सन्तरी हमेशा उन्हें देखता था, लेकिन कभी कोई कुछ कहता न था।

उस दिन पता नहीं, क्या हुआ: शायद सन्तरी बदला था। नये सन्तरी ने सोचा: 'अरे, यह काला कुली, पटरी पर चलता है? और सो भी प्रधान मंत्री के घर के सामने। वाह रे हिमाक़त! बचा को मज़ा चखाना चाहिए!'

उसने आव देखा न ताव; न बोला न चाला, न चेताया; बस एकाएक आगे बढ़ कर गांधीजी को एक धक्का दिया, लात मारी और प्लैटफॉर्म से नीचे गिरा दिया।

गांधीजी चौंक पड़े। यह कैसा गज़ब है? कैसा सितम? खड़े होकर सिपाही से जवाब तलब करने ही वाले थे, कि सामने से एक घुड़सवार आया और बोला: 'मिस्टर गांधी, मैंने सारी हरक़त अपनी आँखों देखी है। तुम इस पर मुक़दमा चलाओ, मैं गवाही दूँगा।'

यह घुड़सवार एक गोरा था और गांधीजी का दोस्त था।

गांधीजी ने कहा: 'नहीं, इसमें मुक़दमे की क्या ज़रूरत है। यह जैसा हज़ारों हिन्दुस्तानियों के साथ पेश आता है, वैसे ही मेरे साथ भी आया। बेचारा क्या करे?'

दोस्त ने कहा: 'नहीं, यह ठीक नहीं है; ऐसों को दुरुस्त करना ही चाहिए!'

गांधीजी ने समझाते हुए कहा: 'भाई, जहाँ सभी गोरे हमें 'कुली' समझते और हमसे नफ़रत करते हैं, तहाँ इस बेचारे नासमझ सिपाही का क्या कसूर?'

फिर तो उस गोरे मित्र ने सिपाही को सारी हक़ीक़त समझाई। बेचारा बहुत सिटपिटाया और आकर गांधीजी से माफ़ी माँगने लगा।

३८

भाई ने पीट दिया

दक्षिण अफ्रीका में मीर आलम नाम का एक पठान रहता था। तोशक-तकिये, गादी-गदेले भर कर बेचना उसका पेशा था। उसीसे उसका गुज़र-बसर होता था।

मीर आलम की गांधीजी से अच्छी जान-पहचान थी। आफ़त-मुसीबत में, काम-काज में, वह हमेशा गांधीजी की सलाह से चलता, और उनकी इज्ज़त करता। जब गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह शुरू किया, तो मीर आलम भी उसमें शामिल हुआ —दिलचस्पी लेने लगा।

सत्याग्रह के सिलसिले में गांधीजी को जेल जाना पड़ा। बहुत-से दूसरे हिन्दुस्तानियों ने भी बड़ी बहादुरी दिखाई और खुशी-खुशी जेल गये। आख़िर सरकार झुकी और समझौता हुआ। कुछ लोगों को यह समझौता पसन्द नहीं आया। मीर

आलम उन्हींमें था। वह गांधीजी पर बहुत गुस्सा हुआ।

अफ्रीका में उन दिनों एक बहुत ही ख़राब और अपमानजनक क़ानून बना था। इस क़ानून के अनुसार वहाँ के सभी हिन्दुस्तानियों को सरकारी परवाने लेने पड़ते थे और उन परवानों पर अपनी दसों अँगुलियों की छाप देनी पड़ती थी। वे परवाने हरएक को रातदिन अपने पास रखने पड़ते थे। जिसके पास परवाना न होता, उसे सज़ा ठुक जाती। ऐसा मनहूस वह क़ानून था। हिन्दुस्तानियों ने इसी क़ानून के खिलाफ़ सत्याग्रह छेड़ा था। समझौते में यह तय पाया कि जो चाहे परवाने ले; न चाहे, न ले।

सत्याग्रह की जीत हुई। सरकार ने गांधीजी को जेल से रिहा कर दिया। दूसरे सब सत्याग्रही भी छोड़ दिये गये। इसके बाद इस जीत की ख़ुशी में एक जलसा हुआ।

जल्से में मीर आलम भी मौजूद था। उसने खड़े होकर पूछा: ‘इसमें हमारी जीत क्या हुई? परवाना लेने की बात तो क़ायम ही रही न?’

गांधीजी ने समझाते हुए कहा: 'जो न लेना चाहे, न ले; इतनी आज़ादी इसमें रक्खी गई है। आप चाहें, न लें।'

'और आप?'

'मैं तो सबसे पहले लूँगा और दसों अँगुलियों की छाप भी दूँगा।'

'लोगों को शक़ है कि आप सरकार से पैसा खा गये हैं। आपने रिश्वत ली है।'

'मैं कहता हूँ, यह ग़लत है। इसे कोई न माने।'

'अच्छी बात है; बन्दा भी ख़ुदा की क़सम खाकर कहता है कि जो अव्वल परवाना लेने जायगा, वह मेरे हाथों मौत पायगा।'

गांधीजी ने कहा: 'अपने भाई के हाथों मरने में मुझे ख़ुशी ही होगी। मगर मैं सचाई से हरगिज़ न हटूँगा।'

इसके कोई तीन महीने बाद का किस्सा है। परवाना लेने की तारीख़ नज़दीक आ लगी। गांधीजी ने और दूसरे साथी नेताओं ने यह तय कर लिया था कि वे सबसे पहले परवाने लेने जायँगे।

मीर आलम भी अपनी बात भूला न था।

गुस्से से बेताब होकर वह मन ही मन बोल उठा: 'देखूँगा, ये कैसे परवाने लेते हैं। इसके बाद अपने दो-तीन पठान दोस्तों को साथ लेकर वह एक जगह रास्ता रोक कर खड़ा हो गया।

गांधीजी उधर से गुज़रे। मीर आलम का दस्तूर था कि जब कभी गांधीजी से मिलता, बड़े अदब के साथ उन्हें सलाम करता। उसके दिल में उनके लिए बड़ी इज्ज़त थी। लेकिन आज वह फिरण्ट रहा। सलाम नहीं किया। गांधीजी ने उसकी आँखों को देखा, तो ताड़ गये कि ख़ून सवार है; ज़रूर कोई अनहोनी होगी।

जब पठान चुप रहा, तो गांधीजी ने ख़ुद मुसकराते हुए पूछा: 'कहो भाई मीर आलम, कैसे हो?' उसने उसी ताव में सर झुकाते हुए कहा: 'अच्छा हूँ।'

समय होते ही गांधीजी का दल परवाना लेने चला। मीर आलम भी अपने दोस्तों के साथ उनके पीछे हो लिया। जब आफिस कुछ ही दूर रह गया, तो मीर आलम लपक कर गांधीजी के सामने जा पहुँचा और बोला: 'कहाँ जाते हो?'

'दसों अँगुलियों की छाप देने और परवाना लेने। चाहो, तुम भी चलो। तुम्हें अँगुलियों की छाप न देनी होगी।'

इसी वक्त पीछे से किसीने कस कर लाठी तौली और वह खटाक् गांधीजी की खोपड़ी पर आकर गिरी! पहले ही वार में गांधीजी गश खा गये, और ज़मीन पर गिर पड़े। बेहोशी की हालत में भी पठान उन्हें डण्डों और लातों से मारते रहे। गांधीजी के साथ जो दूसरे नेता थे, उन्होंने बीचबचाव की जो कोशिश की, तो वे भी बेतरह पिटे!

यों मार-पीट कर पठानों ने रास्ता नापा, लेकिन राहगीरों ने उन्हें पकड़ लिया और पुलिस में दे दिया।

बेहोशी की हालत में लोग गांधीजी को उठा कर पास के एक मकान में ले गये। वहाँ वे सुलाये गये और उनकी मरहम-पट्टी हुई। उनका एक होंठ फट गया था, दाँतों में चोट पहुँची थी और पसलियों में दर्द हो रहा था।

कुछ देर बाद जब होश आया तो जानते हो, पहला सवाल गांधीजी ने क्या पूछा?

'मीर आलम कहाँ है?'

एक सेवक ने कहा: 'आप आराम कीजिये। मीर आलम को और उसके साथियों को पुलिस पकड़ कर ले गई है।'

गांधीजी चौंक पड़े। उन्होंने कहा: 'नहीं, नहीं, उन लोगों को तुरन्त छुड़ाना चाहिए।' और उन्होंने उसी दम पुलिस अफ़सर को एक चिट्ठी लिखी और उनसे प्रार्थना की कि वे उन पठान भाइयों को छोड़ दें। गांधीजी नहीं चाहते थे कि उन्हें सज़ा हो।

गांधीजी की चिट्ठी पाकर पुलिस अफ़सर ने मीर आलम को और उसके साथियों को रिहा कर दिया। लेकिन बाद में जब वहाँ के गोरों ने हाय-तोबा मचाई, तो पुलिस ने उन्हें फिर गिरफ़्तार कर लिया और छः महीनों की सज़ा ठोंक दी।

इसी मार-पीट में गांधीजी के अगले दाँत गये। वह गड्ढा आज भी उनके मुँह की शोभा को बढ़ा रहा है। भाई का दिया हुआ, प्रेम से सहा हुआ, और सत्य की रक्षा में मिला हुआ वह एक उपहार है—तोहफ़ा है।

३९

मीर आलम मुरीद बना

अब आगे का मज़ेदार किस्सा सुनिये ।

दक्षिण अफ्रीका की सरकार अपनी बात पर क़ायम न रही । बस, गांधीजी ने फिर से लड़ाई छेड़ दी ।

लोगों से कहा गया कि सरकार ने धोखा दिया है । हमें फिर से सत्याग्रह करना है । जो परवाने हमने अपनी राज़ी-ख़ुशी से लिये हैं, उनको इकट्ठा करके जला देना है । जिन्हें लड़ाई में शामिल होना हो, वे अपने-अपने परवाने लौटा दें ।

लोग मारे ख़ुशी के पागल-पागल हो गये । गांधीजी के दफ़्तर में परवानों की झड़ी लग गई ।

परवानों की होली जलाने का दिन तय हुआ। उस दिन एक बड़ी भारी आम सभा हुई । सभा के बीचोंबीच परवानों का ढेर रचा गया ।

गांधीजी ने पूछा: 'भाइयो! साफ़-साफ़ कहना, आपने अपनी राज़ी-खुशी से ये परवाने जलाने को दिये हैं न?'

हज़ारों एक साथ बोल उठे: 'जी हाँ, राज़ी-खुशी से दिये हैं।'

'अब भी वक़्त है, जो चाहें, अपना परवाना वापस ले सकते हैं।'

'नहीं, नहीं, हम वापस नहीं लेंगे।'

'देखिये, ख़बरदार! लड़ाई ज़ोर की ठनेगी, जेल जाना होगा।'

'पर्वा नहीं, जेल जायँगे! आप इनमें आग लगा दीजिये।'

इतने में सभा के बीच एक पठान खड़ा हुआ और बोला:

'गांधीभाई, लो यह मेरा परवाना भी लो और जला दो। मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ। मुझे माफ़ करो। मैंने तुम्हें पहचाना न था। तुम सच्चे बहादुर हो।'

यह पठान और कोई नहीं, हमारा मीर आलम ही था।

भरी सभा में गांधीजी ने उससे हाथ मिलाया। सारी सभा तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठी। गांधीजी ने परवानों पर किरासिन छिड़का और आग जला दी। होली धधक उठी।

बस, मीर आलम उसी दिन से गांधीजी का भक्त (मुरीद) बन गया, और उनके न चाहते हुए भी, रात-दिन परछाईं की तरह उनके साथ रहने लगा। वह डरता था कि कहीं कोई गांधीजी को सताये न!

४०

ज़बर्दस्त तूफ़ान

गांधीजी अफ्रीका से हिन्दुस्तान आये। कुछ दिन यहाँ रहे, और वापस दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए जहाज़ पर सवार हुए। यह उनकी दूसरी यात्रा थी। इस बार श्रीमती कस्तूरबा और बच्चे भी उनके साथ थे। रास्ते में जहाज़ एक तूफ़ान से घिर गया। ज़ोरों का तूफ़ान था। मुसाफ़िर डर गये। खाना-पीना हराम हो गया। उल्टियों और उछाटों के मारे लोग दिक आ गये। ऐसे समय गांधीजी ने सबकी सेवा की। सबको ढारस बँधाया। लेकिन सच्चा तूफ़ान तो डरबन में आनेवाला था।

डरबन के गोरों को ख़बर मिल चुकी थी कि गांधी वापस आ रहा है। सब आग-भभूका हो उठे। बोले: 'फिर वह हमारे देश में आ रहा है? उसीने न हिन्दुस्तान जाकर हमारी शिकायत की?

वही न हमें सारी दुनिया में बदनाम कर रहा है? बस, निकाल बाहर करो उसे। मजाल है, जो यहाँ क़दम रक्खे।'

कुछ लोगों ने कहा: 'यह गांधी बहुत ही बदमिज़ाज है; बड़ा मक्कार है; नाकों दम कर रक्खा है, इसने। किसीको सुख से रहने ही नहीं देता। बस, हर बात में 'कुलियों' को हमारे खिलाफ़ भड़काता रहता है। कसम खाओ कि उसे अपनी ज़मीन पर पैर न रखने देंगे।'

दूसरों ने गरज कर कहा: 'और अबकी तो वह अपने बीवी-बच्चों को लेकर आ रहा है। जानों यहीं अड्डा जमाना चाहता है। हम भी देखेंगे, कि बचा कैसे आते हैं और कैसे बसते हैं।'

तीसरे दल ने चिल्ला कर कहा: 'कुछ ख़बर भी है, यारो? अबकी वह अकेला नहीं आ रहा; दो जहाज़ भर कर 'कुलियों' को अपने साथ ला रहा है।'

'लावे बला से; लेकिन उसे यहाँ उतरने कौन देगा?'

'चलो, सरकार से कहा जाय, मनाही-हुक्म ज़ारी कर दे।'

'और अगर सरकार न सुने, तो हमीं गांधी को उठा कर सागर में फेंक दें।'

डरबन के गोरों ने सच-झूठ बहुत-कुछ सुन रक्खा था। इसीलिए वे इतने भिन्ना रहे थे।

इधर गांधीजी को गोरों के इस गुस्से का कोई पता ही न था। उनका जहाज़ डरबन के बन्दरगाह में आ लगा।

बन्दरगाह के अफ़सरों ने देखते ही मनाही कर दी। कहला दिया:

'दूर रहो! अपना जहाज़ यहाँ न लगाओ। यहाँ उतरने की मनाही है। तुम्हारे देश में प्लेग फैला है। तुम्हें 'क्वारंटीन' में रहना पड़ेगा।'

'लेकिन हमारे जहाज़ में कोई बीमार नहीं है।'

'भले न हो! क्वारंटीन में तो रहना ही होगा।'

'कै दिन रहना होगा?'

'२३ दिन।'

गांधीजी को अचम्भा हुआ। ये बन्दरगाहवाले इतना कड़ा रुख क्यों दिखा रहे हैं? धीमे-धीमे

डरबन की बातें कान पर आती गईं, और भेद खुलता गया।

कुछ लोग जहाज़ के मुसाफ़िरों को डराने लगे: 'अरे भाई, लौट जाओ! नहीं, समन्दर में डुबो दिये जाओगे।'

कुछ ने जहाज़ के मालिक को डाँटना शुरू किया: 'अपने जहाज़ वापस हिन्दुस्तान ले जा। वरना बरबाद हो जायगा।'

लेकिन धन्य है उनको कि उनमें से न तो कोई डरा, और न कोई डिगा।

२३ दिन तक सब समुद्र की हवा खाते रहे, और बड़े मज़े से जहाज़ में ये दिन गुज़ार दिये। आख़िर क्वारंटीन से छुटकारा मिला। सभी हँसते-खेलते हिम्मत के साथ डरबन के बन्दर पर उतरे। गोरे मुँह ताकते रह गये।

इतने में एक अफ़सर का सँदेशा आया: 'गांधीजी से कह दो, दिन में जहाज़ से न उतरें; नहीं, जान का ख़तरा है।'

इस पर एक मित्र ने पूछा: 'कहिए, क्या इरादा है? आपको डर तो नहीं न लगता?'

'नहीं, डर की क्या बात है ?'

'तो फिर आइये, दिन-दहाड़े चलें। मैं आपके साथ हूँ। क्या हम चोर हैं, जो अँधेरे में जायँ?'

गांधीजी ने अपने परिवार के लोगों को एक गाड़ी में बैठाया; शहर की तरफ़ रवाना किया; और ख़ुद अपने दोस्त के साथ पैदल डरबन की ओर चले।

दोनों दोस्त शहर में दाखिल हुए। कुछ दूर तक तो किसीने गांधीजी को पहचाना ही नहीं। बाद में कुछ गोरे छोकरों ने, जो उधर से जा रहे थे, गांधीजी को देख लिया। उस देश में वैसी पगड़ी पहननेवाले गांधीजी अकेले ही थे, इसलिए फौरन पहचान लिये गये।

उन्हें देखते ही छोकरों ने शोर मचाना शुरू कर दिया:

'गांधी है! गांधी है!
मारो! मारो!
पकड़ो! पकड़ो!'

शुरू-शुरू में लौंडे चिल्लाते रहे। फिर कंकर फेंकने लगे। इतने में बच्चों के साथ बड़े-बूढ़े भी शामिल हो गये।

मित्र ने गांधीजी से कहा: 'जान का ख़तरा है। जल्दी भाग निकलना चाहिए। चलिये, रिक्शा में बैठ चलें।'

गांधीजी ने चौंक कर पूछा: 'रिक्शा में? भाई, रिक्शा तो आदमी चलाता है। मुझे वह पसन्द नहीं। मैं नहीं बैठूँगा।'

'अजी साहब, बैठ चलिये! पसन्द की एक ही कही। यहाँ जान के लाले पड़े हैं, आफ़त के बादल सर पर मँडरा रहे हैं, और आप पसन्द का चर्चा चला रहे हैं।'

दोस्त ने रिक्शावाले को आवाज़ दी। रिक्शा आई। गांधीजी अपने मन को समझा कर उस पर सवार होना ही चाहते थे कि इतने में लोगों की उस टोली ने रिक्शावाले को घेर लिया।

डपटकर बोले: 'ख़बरदार! भूल कर भी इन्हें न बैठाना। नहीं, रिक्शा तोड़ डालेंगे। सर फोड़ डालेंगे।'

बेचारा हबशी! उसकी हिम्मत ही कितनी? डर गया। 'खा' (ना) कह कर लौट पड़ा। जान लेकर भागा।

अब कोई चारा न रहा। आगे गांधीजी थे। पीछे लोगों की भीड़ थी। जैसे बढ़ते गये, भीड़ भी दुगुनी-चौगुनी होती गई। आगे गांधीजी चल रहे थे, पीछे गोरों का एक जंगी जुलूस आ रहा था।

शरारतियों की उस भीड़ में से एक मोटा-ताज़ा गोरा सामने आया। उसने गांधीजी के साथी को अपनी बगल में दबाया, और उन्हें लेकर एक ओर हट गया।

अब मैदान साफ़ था। गांधीजी अकेले पड़ गये थे। लोगों ने उन पर गालियों की बौछार और पत्थरों की मार शुरू कर दी। एक हज़रत जो आगे बढ़े, तो गांधीजी की पगड़ी उछाल कर चलते बने। एक दूसरे मुस्टण्डे गोरे ने दो चपतें रसीद कीं, और लात मार कर छू हुआ।

अकेले गांधीजी क्या करते? चक्कर खाकर गिरने ही वाले थे कि पास के एक घर की जाफ़री हाथ में आ गई। थामके खड़े हो गये। कुछ देर सुस्ताये और फिर चल पड़े।

बड़ा नाज़ुक मौक़ा था। गांधीजी घिर गये थे। जान का ख़तरा था। इतने में उधर से एक बहादुर

गोरी महिला गुज़रीं। वह डरबन के पुलिस अफ़सर की पत्नी थीं और गांधीजी को पहचानती थीं। वह दौड़ कर गांधीजी के पास पहुँच गईं और धूप न रहते हुए भी, उनके सर पर अपने छाते की छाया कर के साथ-साथ चलने लगीं।

गोरे सिटपिटा गये। उन्हें इस नेक और बहादुर औरत का लिहाज़ रखना ही पड़ा। भीड़ कुछ छँटी। लोग कुछ हट कर चलने लगे। फिर भी बीच-बीच में कुछ मनचले मर्दक दौड़ कर आते और गांधीजी को चपतिया कर चले जाते थे। उन्हें इसीमें मज़ा आता था।

इतने में पुलिस का एक दस्ता आ पहुँचा। उसने शरारतियों की भीड़ को तितर-बितर किया और गांधीजी को उनकी इच्छा के अनुसार उनके मित्र और डरबन के मशहूर व्यापारी पारसी रुस्तमजी के घर पहुँचा दिया।

गोरों की वह शैतानी टोली उस समय तो बिखर गई; लेकिन रात में फिर हज़ारों गोरे पारसी रुस्तमजी के घर के सामने इकट्ठा हो गये और शोर मचाने लगे।

उनकी एक ही पुकार थी—एक ही नारा:

'गांधी को सौंप दो, नहीं घर फूँक देंगे।'

मगर रुस्तमजी थे कि टस से मस न हुए।

इस मौक़े पर डरबन के पुलिस अफ़सर ने बड़ी चतुराई से काम लिया! उन्होंने अपने भरोसे के एक अफ़सर को रुस्तमजी के घर में भेजा। गांधीजी को सलाह दी कि वे भेस बदल कर वहाँ से खिसक जायँ। फिर ख़ुद लोगों की भीड़ में जाकर मिल गये और उसे बहलाने लगे।

उन्होंने रुस्तमजी के दरवाज़े के सामने अपने लिए एक तख़्त रखवा लिया; उस पर चढ़ गये और लोगों से गपशप लड़ाने लगे। एक तुक जोड़ ली, और लोगों से गवाने लगे:

"आओ रे आओ! गांधी को लाओ!
ज़िंदा जलाओ! फाँसी चढ़ाओ!
इमली के पेड़ पर फाँसी चढ़ाओ!"

लोग झूम-झूम कर गाने लगे।

अमलदार ने अपने मन में कहा: 'बच्चो, चिल्लाते रहो, जितना चिल्लाना चाहो! दरवाज़ा मेरे कब्ज़े में है। जाओगे किधर?'

बाहर यह तमाशा हो रहा था। अन्दर गांधीजी पुलिस अफ़सर की भेजी हुई देशी पुलिस की पोशाक पहन रहे थे। गांधीजी को यह चीज़ जँची तो नहीं, मगर मजबूरी थी। जब पहन चुके, तो दोनों बग़ल के तहखानों में घुसे। कुछ देर में सिरे के एक तहखाने का दरवाज़ा खुला! दो जवान उसमें से बाहर निकले; दोनों बलवाइयों की भीड़ में पैठे और बेदाग़ उस पार निकल गये। उनकी तरफ़ किसीने देखा तक नहीं। फ़ुरसत किसे थी, जो देखे?

लोग तो झूम-झूम कर उस तुक को गाने में लगे थे:

"आओ रे आओ! गांधी को लाओ!
जिंदा जलाओ! फाँसी चढ़ाओ!
इमली के पेड़ पर फाँसी चढ़ाओ!"

जब पुलिस अफ़सर को ख़बर मिली कि गांधीजी सही-सलामत दूसरे मुक़ाम पर पहुँच गये हैं, तो उसने फ़ौरन बाज़ी उलट दी, और लोगों से कहा: 'दोस्तो, अब आप थक गये होंगे। जाइये, घर जाकर आराम कीजिये।'

लोग एकदम पुकार उठे: 'नहीं जायेंगे; हरगिज़ न जायेंगे। गांधी कहाँ है? गांधी को लाओ!'

अमलदार ने ज़रा हँस कर कहा: 'मान लीजिये, आपका शिकार आपके सामने से निकल भागा हो, तो आप क्या कीजियेगा ?'

'वाह, ख़ूब कही; निकल भागा हो! कैसे निकल भागा हो? हम इतने जो खड़े हैं, यहाँ?'

'तो मैं आपसे सच कहता हूँ कि आपका शिकार आप ही के बीच से होकर निकल गया है।'

'झूठ! सरासर झूठ! हम हरगिज़ न मानेंगे।'

'अच्छी बात है; अगर अपने बूढ़े फ़ौजदार का आपको यक़ीन नहीं है, तो आप ख़ुद अन्दर जाकर देख लीजिये। लेकिन सब नहीं जा सकेंगे। अपने में से दो-चार को चुन कर भेज दीजिये।'

लोगों ने पंचों को अन्दर भेजा कि जाकर देख आवें। उन्हें यक़ीन हो गया कि गांधीजी घर में नहीं हैं। जब लोगों ने सुना, तो चकराये! ख़ुश-मिज़ाज फ़ौजदार ने कहा: 'दोस्तो, आपने अपनी पुलिस की बात नहीं रक्खी, तो पुलिस को आपसे छल करना पड़ा। हम लोग तो आपके नौकर ठहरे; किसी भी तरह अपना काम बजा लाना हमारा फ़र्ज़

है न ? अब आप मेहरबानी करके जाइये। पुलिस की जीत हुई; आप लोगों की हार।'

जो दाँत कटकटाते आये थे, वही खिलखिलाते हुए लौट गये।

इस बवण्डर के बाद कई दिन बीत गये। गांधीजी की चोटें दुरुस्त हो गईं। गोरों के दिमाग़ ठण्ढे पड़ गये। सब अपने-अपने काम-धन्धे से लगे।

मारपीट करनेवाले गोरों का ख़याल था कि वह 'कुली' बैरिस्टर उन्हें छोड़ेगा नहीं; मुक़दमा चलायेगा; सज़ा ठुकवायेगा।

सरकारवाले रोज़ राह देखते थे कि गांधी आज शिकायत करेंगे, कल करेंगे।

लेकिन गांधीजी का तो तरीक़ा ही कुछ और था! दंगाइयों को वे दया की दृष्टि से देखते थे। मारनेवालों को मन ही मन माफ़ कर चुके थे। वे जानते थे कि बेचारे नासमझ हैं।

एक दिन गांधीजी को डरबन के एक बड़े अफ़सर ने बुलाया और कहा :

'गांधीजी, आपको जो चोट पहुँची, जो परेशानी उठानी पड़ी, उसके लिए हम सचमुच दुखी

हैं। मानता हूँ कि जिन्होंने आपको सताया, वे सब गोरे थे। लेकिन गोरे हुए, तो क्या हुआ? वे गुनहगार हैं। सज़ावार हैं। यह न समझिये कि वे बच जायेंगे। सरकार चाहती है कि उन्हें सज़ा हो। आप ज़रा उनकी शनाख़्त करवा दीजिये।

गांधीजी ने बड़ी शांति के साथ कहा:

'इस सहानुभूति के लिए मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन दर असल मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं है।'

'आप अपराधियों को पहचान तो सकते हैं न?'

'शायद दो चार को पहचान सकूँ! लेकिन मैं मानता हूँ उन बेचारों का कोई कसूर नहीं है।'

'गांधीजी, आप यह क्या कहते हैं? क्या उन दुष्टों ने आपको पीटा नहीं? सताया नहीं?'

गांधीजी से न रहा गया। उन्होंने बिना झिझके साफ़-साफ़ गोरे हाकिम से कह दिया: 'माफ़ कीजिये, असली गुनहगार तो आप लोग हैं। आप-जैसों ने उन्हें उभाड़ा और वे दंगाई बन गये। उन बेचारों का कसूर क्या है? उन्हें सज़ा किस बात की दिलाऊँ?'

४१

हमारे पाप का फल

जब गोरे हमें 'कुली' कहते हैं, तो हम तिलमिला उठते हैं। अब सोचिये कि जिनको हम ढेढ़, भंगी, अछूत वग़ैरा कहते हैं, उन पर क्या बीतती होगी?

हम इन लोगों का कितना अपमान करते हैं? इनसे न हम छूते हैं, न इन्हें अपनी बस्तियों में रहने देते हैं, और न अपनी सड़कों पर आज़ादी से चलने देते हैं। जब कभी इन्हें हमारे बीच से निकलना पड़ता है, तो चिल्लाते-चिल्लाते बेचारों का गला बैठ जाता है:

'दूर रहना, मा-बाप!'

'छूना नहीं, मालिक!'

'आप ही के भंगी हैं, 'अन्दाता'!'

कैसा घोर अपमान है?

बेचारे प्यासों मरते हैं, पर हम हैं कि अपने कुँओं पर उन्हें पानी तक नहीं भरने देते।

गाँव के सभी लड़के स्कूल में पढ़ते हैं, पर इनके लड़कों को हम स्कूल का मुँह नहीं देखने देते। उन्हें दाखिल नहीं करते। करते हैं, तो दूर एक कोने में बैठाते हैं।

रेलगाड़ी में सभी बैठते हैं, लेकिन ढेढ़, भंगी या चमार को देखते ही 'जगह नहीं, जगह नहीं' चिल्ला उठते हैं।

मंदिर में गाँव के सभी लोग देव-दर्शन को जाते हैं। लेकिन इन अभागों के लिए भगवान के घर के दरवाज़े भी बन्द हैं।

यह कोई मामूली दुःख है? छोटी-मोटी बात है?

ये बेचारे गजरदम उठ कर हमारी सड़कें बुहारते हैं; गटरें धोते हैं, गाँव को साफ़ रखते हैं, हमारे लिए कपड़ा बुन कर देते हैं, जूते बनाते हैं, और फिर भी हम इनसे फिरण्ट रहते हैं। इन लोगों की इतनी बड़ी सेवा के बदले में हम इन्हें क्या देते हैं? अपनी जूठन! अपमान, गाली, गन्दगी, ग़रीबी!

हमारे पाप का अन्त नहीं है। फिर क्यों न देश-परदेश में हमारी दुर्दशा हो? क्यों न हम जहाँ-तहाँ ठुकराये जायँ? गांधीजी कहते हैं कि हमारी ग़ुलामी हमारे इन पापों का ही फल है। भगवान ने ही यह फल हमें दिया है। इसीलिए वे हरिजनों की सेवा करते हैं, अपने को हरिजन समझते हैं, और लोगों को समझाते हैं, कि हरिजनों को छूने में पाप नहीं, पुण्य है।

४२

हरिजन पहले

एक गाँव में सभा रक्खी गई थी। गांधीजी उसमें बोलनेवाले थे।

गांधीजी का भाषण, सुनने की इच्छा किसे न होगी? गाँव की अठारहों जात के लोग आ-आकर इकट्ठा होने लगे — ब्राह्मण आये, बनिये आये, ठाकुर आये, पटेल, पटवारी, ज़मींदार, चौधरी, नाई, तेली, कुम्हार, चमार, बढ़ई, सभी कोई आये।

ढेढ़ों के मुहल्ले से ढेढ़ भी आये। उन्होंने सोचा: सभा में चलना चाहिए। बापूजी पधारनेवाले हैं। उनकी बातें सुननी चाहिएँ। उनके दर्शन करने चाहिएँ। न जाना ठीक न होगा। वे भी आये।

सभावालों ने ढेढ़ों को पहचान लिया। लोग चिल्ला उठे: 'अरे ये तो ढेढ़ हैं! दूर, दूर! यहाँ नहीं; उधर जाओ।'

दूसरों ने कहा : 'जाओ, बैरंग वापस हो जाओ ! तुम्हें किसने बुलाया था ? यहाँ तुम्हारा क्या काम है ? '

बेचारों पर चारों तरफ़ से फटकार पड़ने लगी ! कोई उनकी मदद पर आता ही न था।

ग़रीबों ने नरमी से कहा : 'मालिक, हमें भी बैठने दो न ! बापूजी तो हमारे भी हैं ! '

किसीको दया न आई। आख़िर सभावालों को समझा कर ढेढ़ों के लिए कुछ दूर पर थोड़ी जगह दे दी गई और उनसे कह दिया गया : 'यहाँ बैठो, लेकिन ख़बरदार ! किसीसे छूना नहीं। किसीके पास जाना नहीं। '

'नहीं मालिक ! नहीं जायेंगे, यहीं बैठेंगे। '

सभा में ख़ासी भीड़ हो गई। पैर रखने को जगह न मिलती थी। समय हुआ और गांधीजी आये। 'वन्दे मातरम्' और 'महात्मा गांधी की जय' के नारों से सभास्थान गूँज उठा। दूर बैठे हुए उन हरिजन भाइयों ने भी जय-जयकार की पुकार में भाग लिया, और वे उझक-उझक कर अपने बापू को देखने लगे।

आते ही गांधीजी सीधे मंच पर पहुँचे और भाषण करने को खड़े रहे। उन्होंने एक नज़र में सारी सभा का सिंहावलोकन कर लिया। बड़ी पैनी आँखें हैं उनकी! दूर बैठे हुए हरिजनों की उस टोली को उन्होंने तुरन्त ताड़ लिया।

गाँववालों को बुला कर पूछाः 'वे लोग अलग क्यों बैठे हैं?'

'महात्माजी, वे ढेढ़ हैं।'

'क्या हर्ज़ है, अगर वे सबके साथ बैठें?'

गाँववाले सोच में पड़ गये; सर खुजलाने लगे।

'आप लोग उन्हें सभा में न बुला सकें, तो मैं उनमें जाकर बैठूँगा और वहीं से भाषण करूँगा।'

बस, गाँधीजी मंच से नीचे उतर आये, और अपने प्यारे हरिजनों के पास जा पहुँचे। गाँव के कुछ साहसी लोग भी उनके साथ हो लिये। हरिजन भाइयों की ख़ुशी का ठिकाना न था! उनके दिल बाँसों उछल रहे थे। हृदय उमड़े पड़ते थे! वे गद्गद कण्ठ से पुकार उठेः 'बापूजी की जय! जुग-जुग जीयें हमारे बापूजी।'

४३

आश्रम में हरिजन

गांधीजी ने साबरमती के किनारे अपना आश्रम खोला, और ऐलान किया कि कोई भला हरिजन आश्रम में भर्ती होना चाहेगा, तो उसे खुशी-खुशी भर्ती किया जायगा।

शहर के सेठों ने सोचा : 'गांधीजी तो यों ही कहते रहते हैं। मगर ऐसे ठाले हरिजन हैं कहाँ, जो आकर आश्रम में भर्ती होंगे?' लोग इसी ख़याल में मस्त रहे और गांधीजी के आश्रम को पैसे-टके से इमदाद पहुँचाते रहे। आश्रम के ख़र्च के बारे में लोगों ने गांधीजी को बिलकुल बेफ़िकर बना दिया।

कुछ दिन ऐसे ही बीत गये। एक दिन अचानक एक हरिजन परिवार आश्रम में आ धमका! औरत, मर्द और दुधमुँही बच्ची! तीन प्राणी थे। साथ में ठक्कर बापा की सिफ़ारिश थी।

गांधीजी ने सोचा : 'बस, परीक्षा का समय आ गया। भगवान् अब कसौटी पर चढ़ाना चाहता है। इसीलिए उसने इनको भेजा है।

आये हुए हरिजन से पूछा : 'आश्रम के नियम तो जानते हो न?'

'जी हाँ।'

'नियमों का पालन कर सकोगे?'

'जी हाँ, कोशिश करेंगे।'

'बड़ी अच्छी बात है। आप लोग सुख से यहाँ रहिये, और आश्रम को अपना घर समझिये।'

इस तरह एक हरिजन परिवार आश्रमवासी बना। तीनों प्राणी सबके साथ रहते, सबमें मिल कर काम करते, और सबकी बराबरी से बैठ कर खाते।

आश्रम में सब लोग एक-सी समझ के नहीं थे। कइयों को यह बुरा लगा। उनके दिल में खलबली मच गई। लेकिन गांधीजी ने सबको साफ़ साफ़ कह दिया :

'मेरे लिए तो हरिजन पहले हैं। जिनसे इस धर्म का पालन न हो, वे खुशी खुशी आश्रम छोड़ सकते हैं; फिर चाहे वह मेरी पत्नी हो, चाहे पुत्र हो।

बात बिजली की तरह बस्ती-भर में फैल गई कि गांधी के आश्रम में एक ढेढ़ रहने लगा है।

जो सेठ-साहूकार गांधीजी की मदद करते थे, लेकिन कट्टर सनातनी थे, वे चौंक पड़े। उन्होंने मदद बन्द कर दी। वे कहने लगे: "भला आदमी जो कहता था, वही करने भी लग गया। यह तो धरम डुबोने के ढँग हैं। ऐसे अधर्मी की कौन मदद करे?"

मगनलाल गांधी आश्रम के व्यवस्थापक थे। उन्हें फ़िकर हुई। वे एक दिन छोटा-सा मुँह लेकर गांधीजी के पास आये और बोले: "बापू! थैली तो अभीसे हलकी-हलकी है। अगले महीने क्या होगा?"

गांधीजी ने ढाढ़स दिलाते हुए कहा: "भगवान् पर भरोसा रक्खो। जब कुछ नहीं रहेगा, तो हम ढेढ़ों की बस्ती में जाकर बस जायेंगे, मज़दूरी करेंगे और पेट पालेंगे, मगर सचाई से तिलभर भी न हटेंगे!"

४४

दो ऐतिहासिक कूच

अपने सत्याग्रह की लड़ाई में गांधीजी कभी-कभी कूच का भी कार्यक्रम रखते हैं। सत्याग्रह की ऐसी एक कूच उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में की थी और दूसरी हिन्दुस्तान में। हिन्दुस्तानवाली कूच दाँडीकूच के नाम से मशहूर है।

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में जब सरकार ने मनमानी पर कमर कस ली, तो गांधीजी ने तीन पौंडवाले 'जज़िया' के ख़िलाफ़ लड़ाई छेड़ दी, और हज़ारों गिरमिटिया मज़दूरों को लड़ाई में शामिल होने की दावत दी। मज़दूरों ने धड़ाधड़ खेतों और कारख़ानों से रुख़सत ली और गांधीजी के झण्डे तले आ डटे।

अब गांधीजी सोचने लगे कि सत्याग्रह का वह कौन तरीक़ा होगा, जिससे मजबूर होकर सरकार को हज़ारों सत्याग्रहियों की मुश्कें बाँधनी पड़ें—हज़ारों को जेल भेजने का इन्तज़ाम करना पड़े।

आखिर गांधीजी को एक ऐसा तरीक़ा सूझा, जिसका किसीको सपना भी न था। उन्होंने ऐलान कर दिया कि वे अपने भारी काफ़िले के साथ पैदल कूच करेंगे, और बिना परवाने के ट्रान्सवाल की हद में घुस कर परवानों का क़ानून तोड़ेंगे।

बस, कूच का दिन तय हो गया। कूच शुरू हो गई। २,२११ आदमियों का वह काफ़िला क्या था, एक छोटी-मोटी निहत्थी फौज़ ही थी! उस क़ाफ़िले में मर्दों के साथ १२७ औरतें भी थीं। मज़दूर अपने बाल-बच्चों को साथ लिये कूच कर रहे थे! अपना-अपना सामान सब अपने कन्धों पर लादे चले जा रहे थे।

क़ाफ़िला एक हद छोड़ कर दूसरी हद में जा पहुँचा। परवाने का क़ानून टूट गया। मगर सरकार मिनकी तक नहीं। रात, जब सब लोग खा-पीकर सो रहे, तो पुलिस चुपके से आई और गांधीजी को गिरफ़्तार करके ले गई।

सवेरे साथियों को पता चला। लोगों के जोश का ठिकाना न रहा। उन्होंने नये जोश से कूच शुरू कर दी। दूसरे दिन गांधीजी जमानत पर छोड़ दिये

गये। छूटते ही वे अपने दल में आ मिले। लोगों का उत्साह चौगुना हो गया।

अगले मुक़ाम पर सरकार ने गांधीजी को फिर गिरफ़्तार किया, फिर जमानत पर छोड़ा और गांधीजी फिर अपने साथियों के बीच आ पहुँचे। लोगों के हर्ष का पार न रहा।

इस क़ाफ़िले को बड़ी लम्बी-लम्बी मंज़िलें तय करनी पड़ती थीं। दूर का रास्ता था। राह में एक बच्चा बीमार पड़ा और मर गया! सारी छावनी में शोक (मातम) छा गया। लोगों ने बहादुरी के साथ इस चोट को सहा और आगे बढ़ चले।

जैसे ही पड़ाव पड़ता, लोग सोने-बैठने, खाने-पीने, और झाड़ने-बुहारने की तैयारियों में जुट पड़ते; किसीको दम मारने की .फ़ुरसत न रहती। जहाँ पड़ाव होता, वहाँ के हिन्दुस्तानी व्यापारी बड़े प्रेम से क़ाफ़िलेवालों के लिए खाने-पीने का सामान पहुँचा देते।

तीसरी बार जब सरकार ने गांधीजी को पकड़ा, तो फिर पकड़ा ही पकड़ा। जमानत पर भी न

छोड़ा। मुक़दमा चलाया और सज़ा ठोंक दी। गांधीजी जेल चले गये।

अगले मुक़ाम पर सरकार ने सब सत्याग्रहियों को भी दल-बल के साथ गिरफ़्तार कर लिया और दो स्पेशल गाड़ियों में चढ़ा कर रवाना कर दिया।

दाँडीकूच तो अभी कल ही की बात है। उसे कौन नहीं जानता? जब गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आज़ादी के लिए जंग छेड़ने का बीड़ा उठाया, तो उनके सामने सवाल पैदा हुआ कि सत्याग्रहियों के लिए जेलख़ानों के दरवाज़े क्योंकर खुलें। उन्होंने छान-बीन शुरू की। कई बातें सोची गईं; कई सुझाई गईं; अन्त में नमक का क़ानून तोड़ने की बात तय पाई। गांधीजी को वही जँच गई।

नमक का क़ानून तोड़ने के लिए गांधीजी ने दाँडीकूच का कार्यक्रम बनाया और कूच शुरू करने से पहले यह भीषण प्रतिज्ञा की: 'जंगल-जंगल भटकूँगा; दर-दर की ख़ाक छानूँगा; कौए-कुत्ते की मौत मरूँगा; लेकिन मुकम्मल आज़ादी के बिना, सम्पूर्ण स्वराज्य के बिना, वापस आश्रम में पैर न

रक्खूँगा।' बस, इस प्रतिज्ञा के साथ वे चल पड़े।

कार्यक्रम यह बनाया कि साबरमती आश्रम से पैदल चलेंगे। गुजरात के गाँवों और शहरों में ठहरते हुए चलेंगे। अन्त में समुद्र के किनारे दाँडी तक पहुँच कर वहाँ .खुद नमक बनावेंगे, और नमक का क़ानून तोड़ कर मुल्क में लड़ाई का ऐलान करेंगे।

आश्रम के ८० साथियों का एक दल बना कर गांधीजी १२ मार्च, १९३० को साबरमती से चल पड़े। सुबह-शाम चलते; दुपहर में और रात में मुकाम करते; मुकाम पर पहुँच कर लोग खाते-पीते, चर्खा और तकली चलाते; और गांधीजी लोगों को आज़ादी की लड़ाई का संदेश या पैग़ाम सुनाते। जहाँ-जहाँ कूचवाले जाते, जहाँ वे ठहरते, जिन गाँवों और शहरों के पास से होकर निकलते, वहाँ लोगों के दल के दल उनके दर्शनों को उमड़े चले आते। अपने बापू को देख कर और बापू की वाणी सुन कर वे गद्‌गद हो उठते–उनकी आँखों में .खुशी के आँसू छलछला आते।

लोग रोज़ सोचते कि गांधीजी आज गिरफ़्तार होंगे, कल गिरफ़्तार होंगे; और रोज़ उनकी अटकलें

झूठी पड़तीं। आख़िर गांधीजी दाँडी पहुँचे; वहाँ समुद्र में नहाये; समुद्र के पानी से नमक बनाया और नमक का क़ानून तोड़ा। फिर भी सरकार चुप रही, उसने गांधीजी की गिरफ़्तारी का हुक्म न छोड़ा।

सारे देश में नमक का क़ानून टूटने लगा— लोग घर-घर नमक बनाने और क़ानून तोड़ने लगे।

सरकारी दमन शुरू हो गया; लोग गिरफ़्तार होने लगे; जहाँ-तहाँ लाठियों और डण्डों के ज़ोर से सभायें तोड़ी जाने लगीं; कई जगह औरतों पर लाठियाँ चलीं, बच्चों पर डण्डे बरसे। इन ख़बरों से गांधीजी तिलमिला उठे। वे सोचने लगे: 'ये डण्डे औरतों और बच्चों पर न बरस कर मुझ पर बरसने चाहिएँ। मैं क्या करूँ? कैसे ये मुझ पर बरसें?'

आख़िर उन्होंने धारासणा पर धावा करने का, वहाँ के सरकारी नमक को लूटने का, निश्चय किया। लेकिन लूट के लिए जिस दिन कूच करनेवाले थे, उसके एक दिन पहले ही रात में पुलिस आई और चुपके से गांधीजी को चुरा ले गई। फिर उनके साथियों ने धारासणा पर धावा बोला।

४५

राष्ट्रीय उपवास

पंजाब में मातृभूमि का, मादरे हिन्द का, घोर अपमान हुआ था। इस अपमान से सबके दिलों में एक आग जल उठी थी, और सारे मुल्क ने मिल कर सत्याग्रह करने का निश्चय किया था।

लेकिन यह इतना बड़ा काम, भगीरथ काम, शुरू कैसे किया जाय? गाँव-गाँव में और नगर-नगर में सभायें करके? हाँ, यह एक करने लायक काम है। लेकिन गांधीजी को सिर्फ़ सभाओं से संतोष क्योंकर हो?

अच्छा तो गाँव-गाँव और शहर-शहर में हड़ताल मनाई जाय?

ठीक है, इससे भी हमारा क़दम कुछ आगे तो बढ़ता है; लेकिन गांधीजी की तसल्ली के लिए यह भी काफ़ी न था। वे तो किसी ज़्यादा बड़ी चीज़ के लिए तड़प रहे थे। आख़िर एक बात सूझी।

तय किया गया कि देश के सब लोग एक ही दिन इस सिरे से उस सिरे तक फ़ाक़ा करें, उपवास रक्खें ।

सन् १९२१ का साल था और अप्रेल महीने की १३वीं तारीख़ । गांधीजी का संदेश, उनका पैग़ाम, देशभर में फैल चुका था । उस दिन देश के इस कोने से उस कोने तक लोगों ने व्रत रक्खा, फ़ाक़ा किया, शाम को प्रार्थना में शामिल हुए, दुआयें कीं । वह एक ऐसा दिन था, जब इस बड़े भारी मुल्क में, इस विशाल देश में, तीस करोड़ औरत और मर्द नहीं थे, बल्कि तीस करोड़ सिरोंवाला और साठ करोड़ हाथ-पैरोंवाला एक ही 'राष्ट्रपुरुष' था । उस दिन देश एक हो गया था । राष्ट्रीय एकता का वह एक अनोखा दृश्य था ।

राष्ट्रीय उपवास का वह दिन हिन्दुस्तान के इतिहास में अमर हो चुका है ।

४६

प्रेम के उपवास

देश का बच्चा-बच्चा जानता है कि गांधीजी क्या चाहते हैं। वे चाहते हैं :

कोई किसीको न मारे। कोई किसीको न सताये।

यही उनका उपदेश है। यही वह चाहते हैं।

यही वजह है कि जो बालक उनकी राष्ट्रीय शालाओं में या क़ौमी मदरसों में पढ़ते हैं, वे नहीं जानते कि मार किस चिड़िया का नाम है। वहाँ बच्चों को मारपीट का ज़रा भी डर नहीं रहता। अगर कोई शिक्षक मारने उठता है, तो बालक खड़ा होकर पूछ सकता है: 'गांधीजी तो मार-पीट को बुरा समझते हैं, फिर आप मारते क्यों हैं?'

बच्चों से ग़लती हो जाने पर भी गांधीजी उन्हें मारते नहीं; न तानों-तिश्नों से उन्हें शरमाते और बेइज़्ज़त ही करते हैं। लेकिन जब बच्चों से कोई

बड़ा गुनाह, बड़ी ग़लती हो जाती है, तो गांधीजी उसकी सज़ा ख़ुद भुगत लेते हैं—ख़ुद भूखों रह जाते हैं। यह उनका अपना तरीक़ा है।

एक दफ़ा उन्होंने इसी तरह आठ दिन के और दूसरी दफ़ा चौदह दिन के उपवास किये थे। वे कहते हैं, बच्चों के दोष के लिए, उनकी ग़लतियों के लिए, मैं उन पर गुस्सा क्यों होऊँ? खुद मेरे अन्दर ऐसी कोई बुराई होनी चाहिए, जिससे बालक को भी बुरा काम करने की बात सूझी। अगर मैं पवित्र हूँ, तो मेरे पास रहनेवाले बालक अपवित्र कैसे हो सकते हैं? मैं पाक़ और वे नापाक़ क्यों? अगर मैं सच्चे मानों में अहिंसक हूँ, अहिंसा का ठीक-ठीक पालन करता हूँ, तो यह हो नहीं सकता कि कोई बालक मुझसे डरे — अपनी ग़लतियाँ मुझसे छिपावे।

बस, इन्हीं विचारों के कारण गांधीजी ऐसे मौक़ों पर ख़ुद उपवास कर लेते हैं। बच्चों को सज़ा नहीं देते।

अब कौन ऐसा बालक होगा, जो इस अपार प्रेम के आगे अपना सर न झुकावेगा?

४७

महान् उपवास

गांधीजी ने हिन्दुओं और मुसलमानों को बहुतेरा समझाया, लेकिन वे लड़ने से बाज़ न आये।

गांधीजी ने कहा : 'भाइयो, हम एक ही देश की सन्तान हैं। हमें लड़ना न चाहिए।'

लेकिन लड़ाई मिटी नहीं।

गांधीजी ने फिर कहा : 'सोचो तो, हमारे बाप-दादे किस तरह मिल-जुल कर रहते थे।'

तो भी झगड़े तो होते ही रहे।

गांधीजी ने समझाया : 'लड़ने में किसीकी ख़ानदानी नज़र नहीं आती। आप लोग हिलमिल कर रहिये, और लड़ना-झगड़ना बन्द कर दीजिये।'

पर किसीने उनकी बात पर कान न दिया। लड़ाई के जोश में ख़ानदानियत की परवाह कौन करे?

गांधीजी ने चेतावनी देते हुए कहा : 'याद

रखिये, जब तक आप एक न होंगे, आपको स्वराज्य भी नहीं मिलेगा।'

लेकिन जहाँ दिमाग़ में गुस्सा भरा हो, वहाँ स्वराज्य की बातें कौन सुनता?

गांधीजी ने फिर चेताया और कहा: 'देखो, दो की लड़ाई में तीसरे का फ़ायदा हो रहा है। ज़रा आँखें खोल कर देखो।'

पर आँखें तो मारे गुस्से के अन्धी हो रही थीं। वे क्योंकर खुलतीं?

आखिर जब गांधीजी कहते-कहते थक गये और किसीने उनकी न सुनी, तो जानते हो उन्होंने क्या किया?

बस, एक दिन २१ दिन के उपवास का कठिन व्रत लेकर बैठ गये।

उन दिनों गांधीजी दिल्ली में थे और महान् मुसलमान डॉक्टर अन्सारी के घर रहते थे। वहीं उन्होंने अपने २१ दिन के उपवास शुरू किये। गांधीजी हँसते-हँसते भूख की पीड़ायें सहते, और अन्सारीजी गद्‌गद भाव से उपवासी गांधीजी की सेवा करते।

४८

स्वराज्य

हिन्दुस्तान के दादा मरहूम (स्वर्गीय) दादाभाई नौरोजी ने देश के सामने स्वराज्य का मंत्र रक्खा।

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने उसे गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचाया।

गांधीजी ने गाँव-गाँव में और घर-घर में स्वराज्य के लिए यज्ञ शुरू कराया—कुर्बानी का सिलसिला चलाया।

हिन्दुस्तान के दादा ने किताबों को मथ-मथ कर यह पता लगाया कि इस मुल्क की बड़ी से बड़ी बीमारी भूख है।

तिलक महाराज ने छः साल तक जेल के अन्दर बन्द रह कर देशवालों को यह सिखाया कि स्वराज्य ही इस भूख को मिटा सकता है।

अब गांधीजी अपनी तपस्या से, देश को एक नया पाठ, नया सबक़, सिखा रहे हैं। वे कहते हैं :

'देश की बीमारी स्वराज्य से ही मिटेगी, और स्वराज्य खादी से ही मिलेगा।'

यह न समझो कि स्वराज्य की लड़ाई बड़े-बड़े लड़वैये ही लड़ सकते हैं। नहीं, छोटे-छोटे बच्चे भी उसमें सिपाही का काम कर सकते हैं। अगर तुम स्वराज्य की सेना के सिपाही बनना चाहते हो, तो नीचे लिखे काम करने का निश्चय कर लो और स्वराज्य के सैनिक बन जाओ।

१. विदेशी कपड़ा पहनना छोड़ दो, और शुद्ध खादी पहनने लगो।

२. देश की आज़ादी के लिए रोज़ सूत कातो।

३. ग़ुलामी को बढ़ानेवाली तालीम से परहेज़ करो। ऐसी तालीम लो, ऐसे मदरसों में पढ़ो, जहाँ पढ़ने से दिल में देशभक्ति के भाव पैदा हों।

४. अपनी मातृभाषा (मादरी ज़बान) और राष्ट्रभाषा (क़ौमी ज़बान) को अच्छी तरह सीखो। अंग्रेज़ी को पराई माँ समझो, और उसके दूध की ज़्यादा उम्मीद न रक्खो।

५. यह समझ लो कि हमारा हिन्दुस्तान गाँवों का देश है, जिसमें लाखों गाँव हैं; और गाँवों में ग़रीबी का पार नहीं है। इन गाँवों से प्रेम करना सीखो। गाँवों में जाकर बसने के सपने देखो। गाँव की बनी हुई चीज़ों का उपयोग अभिमान के साथ करो।

६. हरिजनों के बच्चों को अपने पास प्रेम से बैठने और पढ़ने दो। अगर हम चाहते हैं कि हमें स्वराज्य मिले, तो हमारा फ़र्ज़ है कि हम सबसे पहले हरिजनों को पूरा-पूरा स्वराज्य दे दें।

४९

अंग्रेज़ों से

गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' नाम की एक किताब लिखी है। उसमें उन्होंने स्वराज्य के बारे में अपने विचार बहुत विस्तार से समझाये हैं। पुस्तक सम्पादक और पाठक के बीच हुई एक बात-चीत के ढंग पर लिखी गई है।

पाठक पूछता है: 'अंग्रेज़ों से आप क्या कहेंगे?'

हम भी यही सवाल पूछना चाहते हैं।

सम्पादक की हैसियत से गांधीजी ने इस सवाल का नीचे लिखा जवाब दिया है। इस जवाब से हमें गांधीजी के विचारों को समझने का मौक़ा मिलता है।

सम्पादक कहता है:

'मैं उनसे (अंग्रेज़ों से) निहायत नरमी के साथ कहूँगा कि आप हमारे राजा ज़रूर हैं। अपनी तलवार के ज़ोर से हैं, या हमारी मर्ज़ी से, इस सवाल की

बहस में पड़ने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। आप मेरे देश में रहना चाहें, रहे; मुझे आपसे कोई दुश्मनी नहीं। लेकिन राजा होते हुए भी रिआया के सामने तो आपको नौकर की तरह रहना होगा। आपका हुक्म हमें नहीं, बल्कि हमारा हुक्म आपको मानना होगा।

अबतक आप यहाँ से जो धन ले गये, सो तो आप हज़म कर गये; लेकिन अब आगे ऐसा न हो सकेगा।

आप हिन्दुस्तान की रखवाली के लिए यहाँ रहना चाहें तो रह सकते हैं; लेकिन हमारे साथ व्यापार करके हमें लूटने का लालच तो आपको छोड़ ही देना होगा।

आप जिस सभ्यता के हामी हैं, हम उसे सभ्यता ही नहीं समझते। अपनी सभ्यता को हम आपकी सभ्यता से कहीं अच्छी समझते हैं। आप भी इसको समझ लें, तो आपका फ़ायदा ही है। लेकिन अगर आपको यह न सूझे, तो भी आप ही की एक कहावत के मुताबिक आपको हमारे देश में देशी बन कर रहना चाहिए।

आपको ऐसा कोई काम न करना चाहिए, जो हमारे धर्म में रुकावट डाले। हाकिम कि हैसियत से आपका यह फ़र्ज़ है कि आप हिन्दुओं के ख़ातिर गाय का और मुसलमानों के ख़ातिर सुअर का मांस खाना छोड़ दें। अबतक हम दबे हुए थे, इससे कुछ कह नहीं पाये; लेकिन आप यह न समझिये कि हमारे दिल दुखे नहीं हैं। हम अपनी ख़ुदगर्ज़ी और अपने दब्बूपन से अबतक कुछ कह नहीं सके, लेकिन अब तो कहना हमारा फ़र्ज़ हो गया है।

हम मानते हैं कि आपके खोले हुए मदरसे और आपकी अदालतें हमारे किसी काम की नहीं। उनके बदले हमें अपनी असली अदालतें और असली मदरसे खोलने होंगे।

हिन्दुस्तान की भाषा अंग्रेज़ी नहीं, हिन्दुस्तानी है। वह आपको सीखनी होगी और हम तो अपना सारा व्यवहार आपसे अपनी ही भाषा में रख सकेंगे।

आप जिस प्रकार रेलों और फ़ौजों पर पानी की तरह पैसा बहाते हैं, उसे हम सह नहीं सकते। हमें उसकी कोई ज़रूरत नहीं मालूम होती। आपको

रूस का डर होगा। हमें नहीं है। जब वे आयेंगे, हम देख लेंगे। अगर उस वक्त आप भी रहे, तो दोनों मिलकर देख लेंगे।

हमें विलायत या यूरोप के कपड़े की ज़रूरत नहीं है। हम तो अपने देश में बनी चीज़ों से अपना काम चला लेंगे। यह हो नहीं सकता कि आप एक आँख मैंचेस्टर पर रक्खें और दूसरी हम पर।

जब आप समझ लेंगे कि हमारा और आपका एक ही स्वार्थ है, और उसी तरह बरतेंगे, तभी हम आपको साथ दे सकेंगे।

मैं आपके साथ गुस्ताख़ी से पेश नहीं आ रहा हूँ। मेरा मतलब साफ़ है। आपके पास हथियारों की ताक़त है। ज़बर्दस्त जहाज़ी बेड़ा है। इनका मुक़ाबिला हम इन्हीं चीज़ों से नहीं कर सकते। फिर भी ऊपर जो कुछ कहा है, वह आपको मंज़ूर न हो, तो हम आपके साथ रह नहीं सकते। आप चाहें, और आपसे हो सके, तो आप हमें क़त्ल कर डालिये। जी चाहे, तोप से उड़ा दीजिये। लेकिन जो चीज़ हमें पसन्द नहीं है, उसमें हम आपकी हरगिज़ मदद

न करेंगे; और बिना हमारी मदद के आप एक क़दम भी बढ़ न सकेंगे।

मुमकिन है कि हुकूमत की मस्ती में, सत्ता के घमण्ड में, आप हमारी इस बात को हँसी में उड़ा दें। और हो सकता है कि हम फ़ौरन ही आपको यह न दिखा सकें कि इस तरह हँसना बेकार है। लेकिन अगर हममें ताक़त होगी, तो आप देखेंगे कि आपकी यह मस्ती निकम्मी थी, और हँसी उल्टी अक़्ल की निशानी थी।

हम मानते हैं कि दिल से आप भी एक ऐसी क़ौम के लोग हैं, जो धर्म को मानती है। हम तो धर्मभूमि के ही निवासी हैं। आपका हमारा साथ कैसे हुआ, इसकी बहस में पड़ना फ़िज़ूल है। लेकिन अपने इस सम्बन्ध का उपयोग हम अच्छे काम में कर सकते हैं। जो अंग्रेज़ हिन्दुस्तान में आते हैं, वे अंग्रेज़ी प्रजा के सच्चे नुमाइन्दे या प्रतिनिधि नहीं होते। इसी तरह हम लोग भी, जो आधे अंग्रेज़ बन गये हैं, अपने को हिन्दुस्तान की असली प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि नहीं कह सकते। अगर विलायत के अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान की हुकूमत का कच्चा चिट्ठा

मालूम हो जाय, तो वे ज़रूर आपका विरोध करेंगे। हिन्दुस्तान के लोगों ने तो आपके साथ नाम-मात्र का ही सम्बन्ध रक्खा है।

अगर आप अपनी सभ्यता को, जो दर असल सभ्यता नहीं है, छोड़ देंगे और अपने धर्म का विचार करेंगे, तो आप ख़ुद महसूस करेंगे कि हमारी माँग वाजिब और मुनासिब है। इसी तरह आप हिन्दुस्तान में रह सकते हैं।

अगर आप इस तरह रहेंगे, तो हमें आपसे जो कुछ सीखना है, हम सीखेंगे; और हमसे आपको जो बहुत-कुछ सीखना है, आप सीखियेगा। इस तरीक़े से हम दोनों फ़ायदे में रहेंगे और दुनिया को भी फ़ायदा पहुँचायेंगे। लेकिन यह होगा तभी जब हमारा और आपका संबंध धर्म की नींव पर क़ायम किया जायगा—उसकी तह में धर्म होगा।

५०

प्रेम

क्या बात है कि हम सब गांधीजी से इतना ज़्यादा प्रेम करते हैं ?

बात यह है कि उनके दिल में हमारे लिए प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है।

क्या वजह है कि गांधीजी से किसीको कोई दुश्मनी नहीं ?

वजह यह है कि उनके दिल में किसीके लिए कभी दुश्मनी के ख़याल ही नहीं आते।

गांधीजी अंग्रेज़ सरकार के अत्याचारों का कड़े से कड़ा विरोध करते हैं, फिर भी बहुतेरे अंग्रेज़ हैं, जो गांधीजी से मुहब्बत रखते हैं: इसीलिए कि गांधीजी के मन में अंग्रेज़ों के लिए भी प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है।

तुमसे कोई काम बिगड़ जाय, कोई ग़लती हो जाय, और मैं तुम पर गुस्सा होऊँ, तो इसमें मेरी

बड़ाई क्या ? ऐसा तो जानवर भी करते हैं। आदमी वह है, जो अपराधियों को भी अपने प्रेम से नहलाता रहे; प्रेम के साथ उनकी शरारतों को सहता रहे।

गांधीजी ऐसा ही करते हैं। वे किसीसे दुश्मनी नहीं रखते; इसीलिए उन्हें भी कोई अपना दुश्मन नहीं समझता। वे सबको अपने प्रेम से नहलाते रहते हैं, इसीसे हमारे दिलों में भी उनके लिए प्रेम ही प्रेम भरा रहता है।

५१

गांधीजी की अहिंसा

'अहिंसा से तुम क्या समझे ?'

'किसीकी हिंसा न करना। किसीको न मारना; न सताना।'

'वैसे किसीके लिए मन में गुस्सा रखना भी हिंसा ही है। इसलिए मन में इस तरह की हिंसा को भी जगह न देना, और मन के कोने-कोने को प्रेम से भरे रहना अहिंसा है।'

'लेकिन जब कोई हम पर हमला करे, तो हम अहिंसा का पालन कैसे करें ?'

'सच पूछो तो ऐसे वक़्त ही अहिंसा की सच्ची परीक्षा होती है। जब कोई सताता नहीं, गुस्सा होता नहीं, तब तो कुत्ते-बिल्ली भी अहिंसक रह लेते हैं। लेकिन वह अहिंसा किस काम की?'

'अगर इस तरह हर किसीकी मार खाकर बैठ जायँ, तो दुनिया हमें डरपोक न कहेगी?'

'डरपोक क्यों कहेगी? हम मार खाकर न तो रोते हैं, और न मार के डर से भागते ही हैं। प्रेम के कारण हमें गुस्सा नहीं आता, हम किसी पर हाथ नहीं उठाते, तो डरपोक कैसे बन जाते हैं?'

'भाई, यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। मारनेवाले को न मारना, सतानेवाले से प्यार करना, बहुत ही मुश्किल है। इससे अच्छा और आसान तो यह है कि जो हमें मारे, हम भी उसे मार दें।'

'सच कहते हो। अहिंसक बनना आसान नहीं है। अहिंसा का मार्ग शूरों का है। अहिंसा शेरदिलों की है। कायरों और डरपोकों की नहीं।'

गांधीजी ऐसी ही अहिंसा का पालन करते हैं, और हमसे भी कहते हैं कि हम सच्चे अहिंसक बनें।

५२

आत्मबल

आज दुनिया में मार-धाड़ करनेवालों का बड़ा ज़ोर है। वे कहते हैं: 'इसने हमें सलाम नहीं किया, हम इसे मार डालेंगे।'

गांधीजी हाथ उठा कर और पुकार-पुकार कर कहते हैं:

'ऐ भारतवासियो, तुम न तो इस कोलाहल में शामिल होओ, न इससे डर कर भागो! तुम अपनी अहिंसा पर डटे रहो। जब सारी दुनिया लड़-झगड़ कर थक जायगी, तो हमींसे अहिंसा सीखने आयेगी।

'कोई अपने मन में यह डर न रक्खो कि अगर हम अहिंसा का पालन करेंगे, तो सब मिल कर हमें मार डालेंगे। तुम अहिंसा को पहचानते नहीं, इसी कारण उससे डरा करते हो। अहिंसा वह चीज़ है, जिससे दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं।'

दुनिया के लोगों को गांधीजी के इस उपदेश पर विश्वास नहीं बैठता। उन्हें इसकी सच्चाई का इतमीनान नहीं होता।

अगर किसी देश के पास एक लाख फ़ौज है, तो दूसरा पाँच लाख रखता है, और तीसरा दस लाख।

एक देश के पास सौ लड़ाकू जहाज़ हैं, तो दूसरे के पास दस सौ, और तीसरे के पास दस हज़ार।

अगर एक देश सौ हवाई जहाज़ रखता है, तो दूसरा पाँच सौ, और तीसरा पाँच हज़ार।

जिसके पास जितने कम हवाई जहाज़ हैं, उसे उतनी ही कम नींद आती है, और उस पर रातदिन अपने जहाज़ों की संख्या बढ़ाने की फ़िक्र सवार रहती है।

फिर ये विमान, ये यान, मुफ़्त में नहीं बनते।

इनके पीछे करोड़ों–अरबों रुपयों का धुआँ उड़ जाता है।

ये करोड़ों आते कहाँ से हैं ?

आते हैं प्रजा के पसीने और प्रजा के ख़ून से।

गांधीजी ने अहिंसा के जो हथियार हमें दिये हैं, वे ये हैं :

सत्याग्रह ।

असहयोग ।

बलिदान ।

हँसते-हँसते मुसीबतों का सामना करनेवाली जनता को देख कर अत्याचारी का अत्याचार निस्तेज हो जाता है । जल्लाद के हाथ काँप उठते हैं । शिकार को कराहते देख कर ही न शिकारी का दिल नाचता है ?

तो बताइये कौन ताक़त बड़ी है ? तोप की या अहिंसा की ? कौन बल बड़ा है ? तोप-तलवार का या आत्मा का ?

गांधीजी सुनी या पढ़ी हुई बात नहीं कहते । तरह-तरह के संकट सहन करके उन्होंने अहिंसा-रूपी रत्न पाया है ।

अहिंसा में ही भारतवर्ष का उद्धार और जय-जयकार है ।